डॉ. तारेंद्र लाखनकर, सिटी युनिव्हर्सिटी ऑफ न्युयॉर्क,
NOAA Center for Earth System Sciences and
Remote Sensing Technologies

एक तारे की उड़ान

गांव से सात समंदर पार एक वैज्ञानिक का सफर

लेखिका
प्रा. वैशाली पराग चारथल

साई ज्योती पब्लिकेशन

मनोगत

एक तारे की उड़ान - गांव से सात समंदर पार एक वैज्ञानिक का सफर यह स्मृतिपुस्तक पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते समय मुझे बहुत प्रसन्नता हो रही है।

"मैंने समंदर से सिखा है जीने का तरीका चुपचाप से बहना और अपनी मौज में रहना।" प्रेमचंद जी की यह पंक्तिया मेरी स्वभावगत विशेषता है। कहानी, कविता साथ ही प्रसिद्ध लोगों की जीवनी, सुविचार पढ़ने-लिखने में विशेष रूचि रखती हूँ, जो मुझे प्रेरणा प्रदान करते है।

एल.ए.डी. एवं श्रीमती आर. पी. महिला महाविद्यालय, नागपुर से मैंने अपनी स्नातक तक पढ़ाई पूरी की और सौभाग्य से इसी महाविद्यालय में हिंदी विषय के क्षेत्र में अध्यापन का मेरा पसंदीदा कार्य कर रही हूँ। जिससे मैं छात्राओं को करीब से जान पायी। आज की युवापीढ़ी पर कुछ कर दिखाने का जूनून छाया होता है। उनमें वह शक्ति होती है, पर मार्गदर्शन के अभाव में योग्य रास्ता नहीं मिल पाता।

"आप सपने देखते है तो उसे पूरा भी कर सकते है", यही प्रेरणा आज की युवापीढ़ी को मिले यह मन में सुनिश्चित किया। इसलिए उनके जीवन सफर को एक पुस्तक के रूप में आपके समक्ष प्रस्तुत करने का मानस बनाया और मेरे प्रथम लेखन कार्य की शुभघड़ी का शुभारंभ हुआ।

डॉ. तारेंद्र लाखनकर के जीवन पर उनकी माँ के विचारों का प्रभाव पुस्तक पढ़ते समय पाठक अनुभव कर पाएंगे। स्त्री शिक्षा का महत्व बताते हुए गांधीजी ने कहा था - "एक पुरुष पढ़ता है तो केवल उस व्यक्ति का विकास होता है परंतु यदि एक स्त्री पढती है, तो वह पूरे परिवार का विकास करती है।"

युवापीढ़ी को सुयोग्य नागरिक बनाने में माँ का अपने बच्चों पर विशेष प्रभाव तथा सर्वाधिक योगदान होता है। माँ बच्चे के जीवन की पहली गुरु होती है। डॉ. तारेंद्र लाखनकर सर की माताजी अल्पशिक्षित लेकिन शिक्षा के महत्व को जानती थी। इसलिए अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा मिले इस ओर निरंतर कोशिश करती नजर आती है। उन्होंने सुसंस्कारों की घुट्टी अपने बच्चों को बचपन में ही

पिलाई। सर की माताजी बचपन से ही दृढ़निश्चयी, संयमी, अन्याय के खिलाफ आवाज उठाती, ईमानदार, मेहनती, स्नेह से रिश्तो को जोड़कर रखती, स्वाभिमानी नारीशक्ति के रूप में हमारे समक्ष आती है। उनकी स्वभावगत विशेषताओं को आप सर के व्यक्तिमत्व में भी देख सकते हैं, जो उनकी सफलता का राज़ है।

अभियांत्रिकी में प्रवेश लेते समय आयी परेशानियों को अपनी जिद और कोशिशों के बल पर मात देकर सफलता प्राप्त की।

आज डॉ. तारेंद्र अमेरिका में निवास करते हैं लेकिन मातृभूमि से आज भी उनका अटूट नाता हैं। इस पुस्तक में वे एक स्थान पर कहते हैं कि मैं अमेरिका में जरुर रहता हुँ लेकिन मैं आज भी तन मन धन से भारतीय हूँ। जब कभी वे भारत में आते है, अपने गाँव जाकर उन स्कूलों में जितनी हो सके, सहायता देने की कोशिश करते हैं।

जिन संस्थाओं से उन्होंने ज्ञान अर्जित किया वहाँ जाकर कुछ ऋण चुकाने का प्रयास करते नज़र आते हैं। उनकी यह शैक्षिक व सामाजिक कर्तव्यों की कृतज्ञता सिर्फ अपने स्वदेश तक सिमित न होकर अमेरिका में भी आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों यानि नेटिव अमेरिकन लोगों के प्रति भी दिखाई देती हैं।

किसी भी विषय की जानकारी विद्यार्थियों को योग्य रुप से मिल सके इसलिए उन्होंने फंड जमा कर वेदर स्टेशन प्रतिकृति की स्कूलों में स्थापना की। उनके कार्यों को ध्यान में लेकर द सिटी कॉलेज ऑफ न्यूयॉर्क ने स्टार प्रेसिडेंट अवार्ड से उन्हें सम्मानित किया। महाराष्ट्र सरकार के साथ सामंजस्य करार कर वे मातृभूमि की सेवा में समर्पित हैं।

डॉ. तारेंद्र लाखनकर सर के जीवन को शब्दबध्द करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। उनके मार्गदर्शन तथा अनुमति से ही हर शब्द लेखबद्ध किया गया है। उनके अनमोल सामयिक सहयोग के कारण आज यह कार्य सफल हो पाया इसलिए उनका आभार व्यक्त करती हूँ।

मेरी इस स्मृतिपुस्तक के लिए प्रस्ताविक लेखन एवं शुभकामनायें हेतु एस.एन.डी.टी. महिला विश्वविद्यालय, मुंबई की कुलगुरु डॉ. उज्ज्वला चक्रदेव मैडम के प्रति हार्दिक आभार प्रकट करती हूँ।

पूर्व राज्यसभा सांसद और नामचीन नेत्रतज्ञ, पदमश्री पुरस्कार से सन्मानित डॉ. विकास महात्मेजी के अनमोल आशीर्वचन के लिए मैं कृतज्ञ हूँ।

मेरी प्रिय सखी डॉ. वैशाली सुजित आकरे (धाबेकर) ने मुझे डॉ. तारेंद्र लाखनकर सर के विषय में बताया तब उनकी जीवनी सुनकर मैं बहुत प्रेरित हुई। आज उनकी प्रेरणा से ही यह कार्य साकार हो सका। अत: मैं उनके अनमोल प्रोत्साहन तथा सहयोग के लिए विशेष रूप से कृतज्ञ हूँ।

इस कथानायक की मराठी भाषा में लिखित पुस्तक की लेखिका शुभांगी मस्के मॅडम जिनका समय-समय पर मुझे मार्गदर्शन मिला, मैं उनका विशेष आभार व्यक्त करती हूँ।

मेरे पति श्री पराग चारथल जिनके सहयोग से यह कार्य संभव हुआ जिन्होंने मेरा समय-समय पर हौंसला बढ़ाया उनके प्रति विशेष कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ। मेरे परिवार के सभी सदस्य, दोस्त परिवार, मेरे विद्यार्थी सभी के सहयोग से आज यह कार्य पूर्णत्व को प्राप्त कर सका है।

किताब की ज़रुरत को देखते हुए कई प्रसिद्ध ज्ञात-अज्ञात साहित्यकारों के प्रेरक सुविचारों का इसमें समावेश किया गया है। प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप में जिनका भी सहयोग मिला उनके प्रति मैं हार्दिक आभार व्यक्त करती हूँ। साथ ही मेरे इस प्रथम प्रयास में मुझसे कोई भूल-चुक या कोई आहत हुआ हो तो मैं हृदय से क्षमाप्रार्थी हूँ।

"ये दु:ख ये दर्द सब तेरे अंदर हैं, तू अपने बनाये पिंजरे से बाहर निकल, तू अपने आप में सिकंदर हैं।"

जहां इच्छाशक्ति होती है, वहां कार्य अवश्य सफल होता है। उनका जीवन दीया बनकर आपको अंधेरे सें उजाले की ओर चलने की राह देता हैं। आप इन अनुभवों को मन के किसी कोने में रखकर सदैव उनसे प्रेरणा लेते रहेंगे और हार न मान आगे बढ़ते रहेंगे इसका मैं विश्वास दिलाती हूँ।

प्राध्यापक व वरिष्ठ वैज्ञानिक डॉ. तारेंद्र लाखनकर सर की जीवनी पढ़कर आप जीवन में प्रेरणा प्राप्त कर आगे बढ़े, इस उद्देश को लेकर मैंने यह स्मृतिपुस्तक लेखन का कार्य किया है। अल्पतम समय में मन के लिखित उद्‌गार आपके समक्ष अवलोकनार्थ प्रस्तुत करते हुए आत्मसंतुष्टि हो रही हैं।

हार्दिक कामना यही हैं कि सुधी पाठकों का आशीर्वाद प्राप्त हो। अपने उत्तरदायित्व की पूर्ति में सफल हुई हूँ या असफल इसका आकलन भी आपको ही करना हैं। जिन आदरणीय जनों-स्वजनों का उत्साहवर्धन और आशीर्वाद प्राप्त हुआ, उनकी मैं अपने हृदय से ऋणी साथ ही स्नेहकांक्षी हूँ। मेरा यह प्रथम प्रयास आपको पसंद आएगा ऐसी उम्मीद करती हूँ।

प्रा. वैशाली पराग चारथल

प्रस्तावना

मन की आवाज से शुभकामना संदेश .....

वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं प्राध्यापक डॉ. तारेंद्र लाखनकर से सितंबर महीने में न्यूयॉर्क के द सिटी युनिव्हर्सिटी ऑफ न्यूयॉर्क (CUNY) विद्यापीठ में एक कार्यक्रम के दौरान मुलाकात हुई। उनसे जान-पहचान करते समय तारेंद्र ने कहा, मैं आपको दीदी कह कर बुलाऊंगा, बड़ा अच्छा लगा। बातों ही बातों में नागपुर और व्ही.आर.सी.ई. कॉलेज ऐसे कुछ शब्द मेरे कानों में पड़ते ही अपने आप उनसे अपनापन बढ़ गया। मेरी बी.आर्क, एम.आर्क. साथ ही पीएच.डी. की पढ़ाई व्ही.आर.सी.ई. कॉलेज से ही पूरी हुई है। मीटिंग के पश्चात मॅनहॅटन होटल उनकी कार से जाते समय उनके कार पर लगी नंबर की तख्ती "तारे-टी.जी." के विषय में मैनें उत्सुकतावश पूछा, जिसमें भी एक राज छुपा हुआ है। तारेंद्र-द-ग्रेट ऐसा उन्होंने बताया। आत्मविश्वास बढ़ाने के इस मूलमंत्र को सुनकर आश्चर्य हुआ साथ ही उन पर बड़ा गर्व भी महसूस हुआ।

हमारे बीच बातचीत बढ़ी और कुछ बातें मन को छू गई। एक-दूसरे से क्या और कितना व्यक्त किया जाए मानो एक ही कॉलेज के दो दोस्त बड़े दिनों बाद मिल गए हो और उस समय की यादें ताज़ा करने जैसी हमारी परिस्थिति हो गई।

उस दौरान तारेंद्र से जो दो-चार मुलाकातें हुई, इस क़िताब में लिखे कई अनुभव और किस्से तारेंद्र से उस समय बातचीत से पता चल ही गए थे। उनके जीवन से जुड़े कुछ रोचक किस्से जानकर मैं उनसे इतनी प्रभवित हुई कि व्यक्त करने के लिए शब्द हि नहीं मिल रहे।

मुंडीकोटा गांव के निवासी हमारे तारे गरीबी और कठिनाइयों से भरे जीवन में सफलता की इतनी ऊँचाई हासिल करेंगे ऐसी उस समय शायद किसी ने कल्पना तक नही की होगी।

माँ के सुसंस्कार, उनका व्यवहार, माँ का दृढ़ता से उनके साथ हर निर्णय में विश्वास के साथ रहना ही आज उनके इस सफलतम जीवन की नींव है और तारेंद्र को भी यही लगता है। आदर्श माता-पिता (आइडियल पेरेंटिंग) की अनेकों

पुस्तकें और टेक्निकल या तकनिकी से जुड़ी कई प्रकार की जानकारी आज हमें उपलब्ध हो जाती है। परंतु तारेंद्र के माँ- बाबूजी का रिश्ता, उनका अपने बच्चों पर अडिग विश्वास और परिस्थिति से दो-दो हाथ कर उस पर मात कर आगे बढ़ने की ज़िद अर्थात आदर्श माता-पिता का यह उदाहरण है। अन्यथा गलत मार्ग पर जाने के भी कई रास्ते उनके सामने खुले थे। परंतु तारेंद्र ने सुसंस्कारों पर चल कर आगे बढ़ने के योग्य रास्ते को चुना।

उनकी माँ कहती- तुम बड़े बनो, तुम आगे बढ़ो यदि तुम आगे बढ़ोगे तो तुम्हारे कदमों पर कदम रख कर तुम्हारे भाई भी तुम्हारे पीछे-पीछे आयेंगे और आगे बढ़ेंगे। परिवार को आगे बढ़ाने में तारेंद्र के यह कदम फिर पीछे कभी नहीं हटे और एक ऊंची उड़ान भरने के लिए आगे ही बढ़ते चले गए।

रेलवे से रोज तुमसर का सफर करते समय उन्हें कई दोस्त मिले। उन दोस्तों से तारेंद्र ने अपनापन सिखा। उनकी गलत आदतों को छोड़ उनके अच्छे गुणों को देखा और जीवन में आगे बढ़ने की प्रेरणा ली।

एक हाथ में गर्म चाय की केतली, कांच के ग्लास और भागती ट्रेन में चढ़ने की कला को उन्होंने आत्मसात किया। यह सब कैसे किया होगा कल्पना करना बड़ा मुश्किल लगता है। जोखिमों से भरे जीवन के इस सफ़र में ऐसा करते समय जो भी समस्याए सामने आई, उन संघर्षों में भी मार्ग निकालते हुए वह आगे भविष्य के लिए एक अच्छा मार्ग तैयार कर रहे थे। जो उन्हें परिस्थिति से लड़ने की ताकत दे रहे थे।

उत्साह और प्रेम से हंसते-खेलते भागदौड़ भरे जीवन का सुंदर- संगम तारेंद्र के स्कूल और कॉलेज के जीवन में दिखाई देता है। शारीरिक खेल उन्हें बहुत पसंद हैं। मुख्य रूप से तैरना और बोटिंग का शौक इसी दौरान उन्हें पूरा करने का अवसर मिला, जिसे उन्होंने बड़े ही उत्साह से यह सब सीखा।

पढ़ाई का संकल्प पक्का था। किसी भी परिस्थिति में पढ़-लिखकर जीवन में बहुत आगे जाना है इसलिए उन्होंने किसी भी तरह के संघर्षों को संघर्ष नहीं माना अपितु स्कूल, दसवीं की परीक्षा, पॉलिटेक्निक, इंजीनियरिंग एम.टेक. तक का सफ़र इतना आसान नहीं था। लेकिन उसे सहज रूप से जीना स्वीकार किया और आगे बढ़े। माँ की काम के प्रति श्रद्धा, कार्य का नियोजन और परिश्रम देखकर उनसे मार्गदर्शन लेते आगे बढ़े, साथ ही उन्हें निखाडे सर जैसे ईश्वर के रूप में मदद करने के लिए आए ऐसे कई लोगों का साथ मिला।

एक सिनेमा में शाहरुख खान के संवाद के समान तारेंद्र भी अक्सर कहते- "शिद्दत से अगर कुछ चाहो तो सारी कायनात उसे आपको दिलाने में जुट जाती है।" इस पर विश्वास कर वे जीवन में आगे बढ़ते रहे।

पीएच.डी. शोधकार्य के लिए अमेरिका की उड़ान भरते समय पत्नी और आठ महीने की उनकी बेटी आस्था को भारत में माँ के पास छोड़कर अमेरिका में जाना उनके लिए कितना मुश्किल पल रहा होगा, परंतु तारेंद्र को अब मुश्किल कुछ नहीं लगता था क्योंकि सपने की उड़ान भरकर उसे मंजिल को प्राप्त करना था। मन में ठाना यह दृढ़संकल्प उन्हें चैन से बैठने नहीं दे रहा था। इसलिए यह सभी समस्याएं उनके लिए मायने नहीं रखती थी।

उन्हें अपने पसंदीदा विषय में अर्थात रिमोट सेंसिंग के द्वारा माइक्रोवेव रेडिएशन मेजरमेंट में काम करने का सुअवसर मिला। नासा जैसी संस्था से जुड़ने का अवसर मिला।

उनके जीवन में सुशिक्षित, पढ़े-लिखे कुछ व्यक्ति भी आए, जिनके दुर्व्यवहार से अजीब तथा कई कटु अनुभव आए। उससे व्यथित हुए बिना या हार न मान कर उनसे सबक लेकर हिम्मत और जोश से आगे बढ़े। ऐसे व्यक्तियों से कैसे दूर रहा जाए और उनसे कम संबंध रख उनसे कैसे निपटा जाए इसका अच्छा ज्ञान तारेंद्र को अब मिल गया था। ऐसे अनुभवों से ही जीवन में नया कुछ उन्हें सीखने मिला।

जी-जान से प्रेम करनेवाले उनके सभी भाई, उनके जीवन की अर्धांगिनी अपर्णा और दो प्यारे-से बच्चे आस्था और आयान के आगमन से उनके एक सुखी परिवार की शुरुआत हुई। मुंडीकोटा की गरीब परिस्थितियों से सभी संघर्षों पर मात कर अब सुखी-समृद्ध जीवन की ओर आगे बढ़ अमेरिका के न्यूयॉर्क शहर में सफ़ल जीवन की शुरुआत हुई है, जहां वे सुख से अपने संसार में तथा अपने काम में मेहनत और लगन से कार्य कर खुश है।

आज तारेंद्र न्यूयॉर्क शहर में रहते हैं, परंतु तन-मन-धन से आज भी अपनी मातृभूमि को स्मरण करते हैं। मातृभूमि से जुड़ी उनकी यादें उन्हें बार-बार भारत में बुलाती है। जो सुख-दुख उन्होंने अपने जीवन में देखे ऐसे मजदूरी करने वाले बच्चों के प्रति, समाज के गरीब और जरूरतमंद लोगों को मदद करने की भावना उनके मन में दिखाई देती है। अपनी मातृभूमि के प्रति समर्पण की भावना उनमें नजर आती है। कई सामाजिक कार्यों में उन्होंने अपने आप को पूरी तरह इस

भावना से व्यस्त किया हैं, ताकि कुछ ऋण चुका सके। मातृभूमि के साथ ही अमेरिका में भी नेटिव अमेरिकन जो गरीब- जरूरतमंद है, उन्हें भी मदद मिले अक्सर ऐसे प्रयास करते हैं।

आकाश के कई तारे भी उनकी उपलब्धियों की चमक से हैरान हैं, वे सभी तारे तारेंद्र के जीवन को रोशन करें और उनको अनंत-अनंत सुख, खुशियां और समृद्धि मिले, यही ईश्वर चरणों में प्रार्थना और उज्जवल भविष्य के लिए हार्दिक शुभकामनाएं देती हूँ।

पठन-पाठन के बीच ही जीवन में क्षणै:-क्षणै: कुछ न कुछ सीख मिलती ही रहती है। मेरी वाचन की रूचि मुझे इस ओर अधिक आकर्षित करती आई है। जब "एक तारे की उड़ान - गांव से सात समंदर पार एक वैज्ञानिक का सफर" यह पुस्तक पढ़ने का शुभअवसर मिला, मुझे बहुत उत्सुकता हुई। इस क़िताब की लेखिका एल.ए.डी एवं आर.पी महिला महाविद्यालय से वैशाली ने अपनी पढ़ाई पूरी की। इस महाविद्यालय की छात्रा आज यहां अध्यापिका के रूप में हिंदी विभाग में कार्यरत है, इस बात की मुझे बड़ी ख़ुशी और गर्व भी हैं। इस महाविद्यालय से मेरा बहुत पुराना नाता हैं।

वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं प्राध्यापक डॉ. तारेंद्र लाखनकर जी के जीवन को पुस्तक के रूप में लेखबद्ध करने का बहुत ही उत्तम प्रयास किया है। उनकी गंभीर लेखनी से सजे उनके आत्मकथ्य मन को छूते हैं। ऐसा प्रतीत होता है, मानो जो घटनाक्रम वैशाली ने उद्धृत किए हैं, वह सब अपने साथ ही घटित हुआ है।

शब्दांकन और भावाभिव्यक्ति भी पाठक को पढ़ने के लिए निरंतर प्रेरित करती है। आशा है अन्य सुधी पाठक जन भी उनकी अभिव्यक्ति का सुखद अनुभव करेंगे। मैं वैशाली जी को उज्जवल भविष्य की शुभकामनाएं प्रेषित करती हूँ, साथ ही उनके सद्प्रयास के लिए हार्दिक बधाई देती हूँ।

प्रा. डॉ. उज्ज्वला चक्रदेव
कुलगुरू,
एस.एन.डी.टी. महिला विद्यापीठ, मुंबई

DR. VIKAS MAHATME
Ex. Member of Parliament (Rajya Sabha)
Padmashri Awarded Eye Specialist

सत्यमेव जयते

डॉ. विकास महात्मे
पूर्व सांसद (राज्य सभा)
पद्मश्री पुरस्कृत नेत्रतज्ञ

15/12/2022

आशीर्वचन

मुझे बहुत प्रसन्नता हुई की "एक तारे की उड़ान - गांव से सात समंदर पार, एक वैज्ञानिक का सफर" यह स्मृतिपुस्तक पढ़ने का अवसर मिला, बहुत अच्छा लगा। एल.ए.डी. महाविद्यालय, नागपुर में कार्यरत अध्यापिका एवं इस पुस्तक की लेखिका प्रा. वैशाली चारथल जी की प्रवाहमान हिंदी भाषा में लिखित, सहज एवं सरल शैली में प्रस्तुत यह एक मौलिक कृति है। इस प्रकार के पुस्तकों की आज हमें अधिक आवश्यकता है।

कामयाब होने के लिए अकेले ही हौंसला रखकर जीवन में आगे बढ़ते रहे, ऐसे हमारे वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं प्राध्यापक डॉ. तारेंद्र लाखनकर जी के जीवन सफ़र के कई अनुभवों के विषय में आप जान पाएंगे। गरीब परिस्थिति में भी जीवन में आयी किसी भी तरह की कठिनाइयों पर मात कर सकारात्मक दृष्टि से आगे बढ़, उन्होंने आज वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं प्राध्यापक के रूप में अपना मुकाम हासिल किया है। इसके लिए मैं डॉ. तारेंद्र लाखनकर जी को बहुत-बहुत शुभकामनाएं प्रेषित करता हूँ।

साथ ही लेखिका प्रा. वैशाली चारथल जी की इस स्मृतिपुस्तक की सफलता एवं भविष्य में आपकी और अधिक लाभदायक कृतियों की कामना करता हूँ। आपका यह सराहनीय कार्य सुधी पाठक गण एवं विद्यार्थी वर्ग सभी को प्रेरणा प्रदान करें। भविष्य में आपसे समाज को अनेक श्रेष्ठ कृतियों की अपेक्षा है। आपके उज्ज्वल साहित्यिक एवं मंगलमयी जीवन के लिए तथा आकांक्षाओं को बुलंदियों के पंख मिले इसी मनोकामना के साथ स्नेहमयी शुभकामनायें देता हूँ।

डॉ. विकास महात्मे

अनुक्रमणिका

परिचय	01
माँ... मेरी प्रेरणा	03
माँ की काम के प्रति श्रध्दा	07
मुंडीकोटा का जीवन	16
स्नेह की ड़ोर से रिश्तो को जोड़ती माँ	21
ट्रेन का सफर: मुंडीकोटा से तुमसर की यादें	24
आटाचक्की और हमारी सहनशक्ति	44
पॉलिटेक्निक: साकोली-नागपुर	50
पॉलिटेक्निक से अभियांत्रिकी	59
नांदेड़ से अभियांत्रिकी	64
एम. टेक. और भाइयों की शादी	74
शादी के बाद का जीवन मुंबई में	78
अमेरिका की उड़ान	86
अमेरिका के अनुभव	93
अमेरिका में शोधकार्य	97
मातृभूमिको समर्पित हमारी देन	104
तारे - द - ग्रेट	110
माँ का अंतिम सफ़र	117

परिचय

"मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।" इस उक्ति को मैंने अपने जीवन में स्वयं चरितार्थ किया है। जीत और हार हमारी सोच पर निर्भर करती हैं। किसी भी परिस्थिति में हार न मानकर लड़ते रहने से जीवन में सफलता अवश्य प्राप्त होती है। इसकी जानकारी देना, साथ ही जीवन में आगे बढ़ने की प्रेरणा आपको मिले, यही इस पुस्तक को लिखने का हमारा उद्देश्य है। इसी मूलमंत्र के कारण मैं यहां तक का सफर तय कर पाया हूँ।

आज मेरे जीवन के पचास वर्ष पूरे हो गए। मैं अपने जीवन में अब काफ़ी स्थिर हो चुका हूँ। भारत में ही नहीं, सात समंदर के पार "डॉ.तारेंद्र लाखनकर" के रूप में आज अपनी पहचान बना पाया। वह केवल और केवल माँ-बाबूजी ने मुझ पर जो संस्कार किए, उनकी वजह से ही यह सब संभव हो पाया। इन पचास वर्षों में बहुत कुछ बदल गया है, लेकिन सच बताऊँ तो बदली है केवल परिस्थिति।

मैं अमेरिका के "द सिटी यूनिवर्सिटी ऑफ न्यूयॉर्क" के उपग्रह रिमोट सेंसिंग केंद्र में वरिष्ठ वैज्ञानिक के रूप में शोधकार्य कर रहा हूँ। साथ ही प्राध्यापक के पद पर यूनिवर्सिटी में पढ़ाता भी हूँ।

मैंने डॉक्टरेट अमेरिका की "द सिटी यूनिवर्सिटी ऑफ न्यूयॉर्क" और पोस्ट-डॉक्टरेट "कोलोरेडो स्टेट यूनिवर्सिटी" से पूरी की। उसके पहले एम.टेक. "विश्वेश्वरैया नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी", नागपुर और गवर्नमेंट पॉलिटेक्निक, साकोली और नागपूर से डिप्लोमा के बाद नांदेड के "श्री गुरु गोविंद सिंहजी कॉलेज ऑफ़ इंजीनियरिंग एंड टेक्नोलॉजी" से बी.ई. की डिग्री प्राप्त की।

एक छोटे-से गांव से निकलकर सात समंदर पार तक का सफर मेरे लिए इतना आसान नहीं था। फर्श से अर्श की ओर बढ़ता मेरे जीवन का सफर इस पुस्तक के माध्यम से आप तक पहुँचाने का यह मेरा एक छोटा-सा प्रयास है। इस

सफर में कई लोगों ने प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से मुझे अपना योगदान दिया, उन सभी का इस पुस्तक के माध्यम से मैं आभार व्यक्त करता हूँ।

सात समंदर पार जाकर बसनेवाले परिवारों की जड़े कहाँ से शुरू हुई थी, इसकी आनेवाली पीढ़ी को जानकारी मिले, साथ ही सुख-दुःख और कठिनाइयों का सामना करते हुए जीवन में हम कैसे आगे बढ़े? इसकी प्रेरणा देना, यही इस पुस्तक का उद्देश्य है।

डॉ. तारेंद्र लाखनकर

माँ... मेरी प्रेरणा

आज नींद इतनी अच्छी लगी कि सूर्य की अंतिम किरण पर्दे के पीछे से आकर खिड़की से मुझे झांकने लगी, और मेरे अँधेरे कमरे में उजाला फैलाकर मुझे जगाने लगी। मैं झटके से उठा। सूर्य देवता भी मानो मेरे बाहर आने की प्रतीक्षा कर रहे थे।

पिछले कई सालों से सूर्यदेवता और मैंने तय किया था, कि हमारी मुलाकात के पश्चात ही वह सूर्यास्त होगा। काम से लौटते समय लाल रंग से आच्छादित आसमान में सूर्यास्त के समय सूर्य को एकटक देखना मुझे बहुत भाता हैं। मैं टकटकी लगाकर उससे बातें करता हूँ, उससे मिलना मुझे अच्छा लगता है। यह सुरम्य वातावरण मेरा मन मोह लेता है। मैं इसकी मनमोहक सुंदरता में मग्न होकर झूम उठता हूँ।

आसमान में उजाले का साम्राज्य जब तक बिखरा है, तब तक मैं अपनी चीजों को समेट लेता हूँ। अंधेरे घर में लाइट का बटन दबाते ही मेरे दोनों हाथ अपने आप प्रणाम करने हेतु जुड़ जाते हैं, उस मानव निर्मिती के समक्ष जिसने एक बटन दबाते ही अंधेरे पर विजय प्राप्त की। विज्ञान हमें उसके चमत्कारों पर सोचने के लिए मजबूर करता हैं। उसके यह चमत्कारिक आविष्कार हमारे शरीर के रोंगटे खड़े कर देता हैं।

मैं बिखरी पड़ी थोड़ी-बहुत चीजें समेटकर अपना काम निपटाकर पूजा घर की ओर चल पड़ा। दीये की बाती को ठीक करते वक्त पूजा घर के कृष्ण को ध्यानमग्न होकर निहारता हूँ और क्षण भर के लिए मुझे माँ का ध्यान उमड़ आता है।

माँ ने यहां विदा करते समय हाथ में कृष्ण की मूर्ति देकर कहा था, इस कृष्ण के रूप में तुम्हारे घर भी गोकुल का वास हो। शरीर से दूर जा रहे हो लेकिन मन से नहीं। सचमुच माँ के आशीर्वाद और कृष्ण की कृपादृष्टि से सबकुछ सुख

और खुशहाली में आज तक का सफर सफलतम रहा। मेरे मन में इस बात की बहुत खुशी हैं कि ईश्वर की कृपा सदैव मुझ पर बनी रही।

दीये के प्रकाश में पूजाघर सुनहरे रंग में चमकता देख मन प्रसन्न है। भगवान की मूर्तियां इस सुनहरे प्रकाश में जगमगाते सितारे की भाँति चमक रही है तथा "शुभम करोति" के मधुर स्वर से घर गुंजायमान है। खुशबूदार अगरबत्ती की महक घर को सुगंधित बनाए हैं। आँगन की तुलसी भीनी-भीनी हवा से डोल रही है। तुलसी वृंदावन के दीये से आँगन जगमगा रहा है और मैं भगवान के समक्ष नतमस्तक हो जाता हूँ।

मैंने बचपन से माँ को ईश्वर से प्रार्थना करते हुए देखा - "मेरे बच्चों को सुखी रखना, खुश रखना" यही एक आवाज उनकी अंतरात्मा से कई वर्षों तक मैंने सुनी। उन पलों को यादकर मैं कृतकृत्य हो जाता हूँ, अपने आप को धन्य महसूस करता हूँ।

एक छोटे से गांव में निवास करने वाले, एक साधारण किसान परिवार की बेटी "लीला अहिरकर", पढ़ाई नाममात्र की..! वैसे भी उस काल में स्त्रियों को अधिक पढ़ाने का चलन नहीं था। परिस्थिति भी इसके लिए जिम्मेदार रही, इसलिए सातवीं कक्षा तक पढ़ाई पूरी की। श्री यशवंतराव लाखनकरजी से शादी हुई और माँ मुंडीकोटा के लाखनकर परिवार में आकर "श्रीमती गीता लाखनकर" बन गई।

शहर से दूर किसी मुंडीकोटा गांव में छोटा-सा घर, बहुत ही नाजुक परिस्थिति, हाथ मजदूरी कर जीवन निर्वाह करना, "कमाया जाए तो ही खाने को मिले", ऐसी परिस्थिति। ईमानदारी से मेहनत करना और आनेवाले दिन का स्वागत करना, बस इतना सादगी से भरा जीवन था।

माँ के बारे में क्या बोलूं? उनके बारे में लिखते समय शब्द ही कम पड़ जाते हैं। मेरे लिए मुंडीकोटा से अमेरिका तक का सफर माँ के बिना असंभव ही था। इसे माँ की पुण्याई...! और मेरे अच्छे कर्मों का ही फल मानता हूँ।

जन्मदाता माता-पिता की हमारे जीवन में कितनी अहम भूमिका होती है, यह हम कभी सोच भी नहीं सकते। हम कितने ही बड़े हो जाए, तो भी माँ-बाप के ऋण चुका सके, इतने बड़े हम कभी नहीं होते। उनके ऋणी ही रहते हैं, इसलिए हमेशा हमें उनका आदर करना चाहिए। माँ स्वभाव से अत्यंत शांत, सुशील, गंभीर महिला थी। ममता की बेड़ियाँ कभी उसने हमारे पैरों में बाँधी नहीं। इसके

विपरीत आसमान में ऊँची उड़ान भरने के लिए हमारे पंखों में आशा का बल दिया। हर कदम पर हौंसला बढ़ाया। छोटे-बड़े हर तरह के निर्णय में माँ हमेशा हमारे साथ डटकर खड़ी रही।

हम पाँचों भाई हमारी माँ का स्वाभिमान, अभिमान थे। पहला तारेंद्र, दूसरा जितेंद्र, तीसरा राजेंद्र, चौथा क्रांति और पांचवा संजय। तारेंद्र को तारेन, जितेंद्र को प्यार से जीतू, राजेंद्र को बालू और क्रांति को गट्टू, तो संजय को छोटू, यह हमारे माता-पिता द्वारा हमारे जन्म के समय लाड़-प्यार से रखे हुए हमारे नाम थे। मेरे चारों छोटे भाई मुझे भैय्या कहकर पुकारते। माँ - बाबूजी, दादी - दादाजी और हम पाँच भाई ऐसा हमारा एक बड़ा-सा परिवार था।

माँ अक्सर कहती-- "तुम जीवन में बहुत आगे बढ़ो। बड़े बन जाओ। तुम यदि आगे बढ़ोगे, तो तुम्हारे कदमों पर कदम रख कर सभी भाई तुम्हारे पीछे आएंगे। तुम्हें अपना आदर्श उनके सामने रखना चाहिए। तुम अपनी दिशा और लक्ष्य तय करो। तुम बड़े हो, तुम्हें रुकना नहीं हैं।" और तब से मैं भागता ही चला गया। आज पीछे मुड़कर देखता हूँ तो, माँ का कहना कितना सच था, इसका एहसास होता है।

माँ-बाबूजी की वजह से ही आज हम यहां तक पहुँच पाए हैं। हर माँ-बाप अपने कर्तव्य का निर्वाह कर, बच्चों का सही मार्गदर्शन करते हैं। परंतु अपनी सही पहचान हमें खुद ही बनानी पड़ती है। अपनी मंजिल का चुनाव तथा वहां तक का सफर स्वयं ही तय करना पड़ता है।

अक्सर माँ कहती - "मार्ग में आयी अनेक बाधाओं और परिस्थितियों का सामना हमें अपने बल पर ही करना पड़ता है। और मेरे बच्चे अपने जीवन की हर परीक्षा में पूरे अंकों से पास हुए, इसका मुझे गर्व है। एक माँ के लिए यह सबसे बड़ी उपलब्धि है, कि उसके बच्चें यहां तक पहुँचे। मेरे बच्चे मेरा अभिमान हैं। ऐसे कर्तृत्ववान बच्चों को जन्म देकर, मैं खुद को धन्य समझती हूँ। जन्म से लेकर बड़े होने तक बच्चों को अपने माता-पिता के नाम से ही जाना जाता है। पर सच बताऊँ तो माँ-बाप को असली खुशी तब होती है, जब बच्चों के नाम से माँ-बाप को पहचाना जाए। वह खुशी शब्दों में व्यक्त करना असंभव है। मेरे बच्चों ने आज हमारा नाम सात समंदर पार रोशन किया - आज तीन बच्चे परदेस में हैं और बाकी दोनों अपने ही देश में अपने-अपने जीवन में सफल होकर एक अच्छी जिंदगी बिता रहे हैं। छोटी-छोटी बातों के लिए उन्हें बहुत दु:ख झेलने पड़े। परंतु

उन्होंने कभी कोई शिकायत नहीं की बल्कि बहुत मेहनत की, उनकी पढ़ाई करने की ललक हमें रात-दिन काम करने की ऊर्जा देती रही।"

कई बार दो वक्त के खाने के भी लाले होते। आज वो पल स्मरण हो आते हैं तो, आँखें नम हो जाती है। कैसी परिस्थिति में हमने ऐसे दिन निकाले? बुरे दिन कभी किसी के लिए नहीं रुकते, हर बार परिस्थिति समान रहे, ऐसा भी नहीं होता। सुख और दुःख, जीवन की परिभाषा, इसी का नाम तो जीवन है।

जब मैं अकेला होता हूँ, तो मेरी सभी स्मृतियाँ मेरे स्मृति-पटल पर ऐसे छा जाती है, मानो सभी घटनाएँ आज ही घटित हुई हो। कभी आँखें छलक पड़तीं तो कभी यादों का तूफान मस्तिष्क पर छा जाता। सुख-दुःख के पलों को याद कर मन सुन्न हो जाता हैं। यादें तो कभी-भी आ सकती है। उनमें खो जाना यह एक सहज मानवीय प्रवृत्ति हैं।

माँ की काम के प्रति श्रध्दा

मुंडीकोटा चलती ट्रेन का एक छोटा-सा स्टेशन। (तालुका तिरोडा, जिला भंडारा, महाराष्ट्र राज्य) नागपुर-गोंदिया पैसेंजर ट्रेन सिर्फ कुछ मिनटों के लिए ही रुकती थी। मुंडीकोटा सिर्फ तीस घरों का एक छोटा-सा गांव था। स्टेशन रोड पर हमने चाय की एक छोटी-सी दुकान लगाई। दुकान में चाय, पपड़ी, नमकीन और कभी-कभी गरमा-गरम पकोड़े भी बेचने के लिए होते। यह केवल एक दुकान नहीं, हमारे जीवननिर्वाह का साधन थी।

गांव से नजदीक ही एक बीड़ी कंपनी थी। वहां के निवासी, स्कूल के शिक्षक, रेल्वे कर्मचारी, और स्टेशन से गांव में आना-जाना करनेवाले मजदूर यही हमारे ग्राहक थे। गांव में दो चाय की दुकान होने के कारण ग्राहक आधे-आधे बँट जाते थे।

माँ चाय की गुणवत्ता और स्वाद पर बहुत ध्यान देती। दुकान में बेचने के लिए रखी वस्तुओं की गुणवत्ता को लेकर माँ को किसी भी तरह का समझौता मंजूर नहीं था। इसलिए ईमानदारी से दुकान चलाकर व्यवसाय करना, यही नियम हमने अपने जीवन में अपनाया।

रात को दुकान बंद करने में बहुत देर हो जाती थी। जिससे घर और दुकान के काम संभालते समय माँ-बाबूजी को बहुत कष्ट उठाने पड़ते और उनको अधिक भागदौड़ हो जाती। ऐसे ही अकेले जिंदगी की जंग लड़नी पड़ती है, मैं यह आज समझ पाया हूँ।

हम काफ़ी छोटे थे, इसलिए दुकान के पीछे एक छोटी-सी झोपड़ी माँ - बाबूजी ने बना ली। दुकान के साथ-साथ, बच्चों की ओर ध्यान देना, अब माँ - बाबूजी के लिए आसान हो गया। एक भी ग्राहक वापस न चला जाए इस कोशिश में, हमें यह दुकान चलानी पड़ती। बच्चों को पाल-पोस कर बड़ा करते समय,

कोई कमी न रह जाए, इसलिए माँ - बाबूजी हमेशा प्रयासरत रहते। ऐसा करते समय कई बार अनेक कठोर निर्णय हमारे माँ-बाबूजी को लेने पड़े।

मुंडीकोटा गांव में चौथी कक्षा तक तथा एक किलोमीटर दूर मुंडीकोटा स्टेशन के पास पाँचवी से दसवीं कक्षा तक स्कूल थी। मैं चौथी कक्षा तक अपने गांव की स्कूल में ही पढ़ा। पढ़ाई में होशियार था। हमेशा कक्षा में प्रथम आता। चौथी कक्षा में स्कॉलरशिप की परीक्षा अच्छे अंको से पास कर तालुका स्तर की परीक्षा में मैंने प्रथम क्रमांक प्राप्त किया था। मेरी प्राथमिक शिक्षा गांव में हुई, उसी प्रकार आगे की पढ़ाई भी मुंडीकोटा स्टेशन के नजदीक स्थित स्कूल में हो सकती थी। पर मुझे तुमसर के लोकमान्य तिलक राष्ट्रीय विद्यालय में दाखिल कर दिया।

मेरे मन में उस समय अनेक प्रश्न उठने लगे। गांव में स्कूल तो है फिर मैं तुमसर में पढ़ाई के लिए क्यों जाऊ? एक दिन माँ को स्पष्ट रूप से बता दिया। मेरे सारे दोस्त यही पढ़ते हैं, मुझे भी यही रहना है। माँ-बाबूजी और भाइयों को छोड़कर रहने का विचार मन में आते ही मैंने मना कर दिया।

माँ ने मुझे अपने पास बुलाकर अपनी गोद में ले लिया और कहा, बेटा तारेन!.. तुम होशियार हो। तुमसर जैसे शहर के स्कूल में यदि पढ़ोगे, तो तुम्हारी योग्य प्रगति हो सकती है। तुम्हे शिक्षा का सर्वोत्तम अवसर मिले, इस दृष्टि से ही मुंडीकोटा से पंद्रह से बीस किलोमीटर दूर तुमसर में स्थित, लोकमान्य तिलक स्कूल में तुम्हारा दाखिला कर दिया हैं, "तुम्हें गांव के अन्य बच्चों का अनुकरण नहीं करना है सब तुम्हारा अनुकरण करें, ऐसा तुम्हें बनना है, अपनी अलग पहचान बनानी हैं तुम्हें बहुत बड़ा आदमी बनना है", "बनोगे ना"....! मैं सिर्फ माँ को एकटक देखता रह गया।

माँ हमेशा कहती -- कुएँ का मेंढक बनने से अच्छा है, बहती नदी की मछली बनना, परंतु माँ ने समंदर की मछली बनने के सपने दिखाए। आज सोचता हूँ तो माँ की दूरदृष्टि पर आश्चर्य व्यक्त होता है। इतने छोटे-से बच्चे को किसी दूसरे गांव में पढ़ाई के लिए भेजने का माँ का निर्णय सचमुच बहुत बड़ा और कठिन था। सही मायने में **"माँ मेरे जीवन की पहली गुरु थी।"**

वह गाड़ी और साइकिल का जमाना नहीं था। मेरी उम्र भी बहुत कम थी। रोज इतना सफ़र करना शायद मेरे लिए संभव न था, इसलिए माँ-बाबूजी ने मुझे तुमसर में रखने का निर्णय लिया। इसलिए एक छोटा-सा दस बाय दस का कमरा

किराये से हमने ले लिया दादी को मेरी देखभाल के लिए, मेरे पास तुमसर में रखा गया।

तुमसर में मैं और दादी हम दोनों रहते। हम से मिलने के लिए दादाजी अक्सर तुमसर में आते थे। दादा-दादी का एक-दूसरे पर बहुत स्नेह था। दादी शरीर से हमारे साथ रहती लेकिन उसकी बातों में हमेशा दादाजी की चिंता, गांव की यादें, घर की चिंता ही रहती थी। दादी तबीयत से बहुत नाजुक थी, बार-बार बीमार पड़ती। चार-पाँच महीने ही हुए थे, कि दादी फिर बीमार पड़ गई। उन्हें गांव ले जाना पड़ा।

मैं दस-ग्यारह साल का लड़का। तुमसर में अकेले रहना, मेरे लिए संभव नहीं था। बचे हुए छह महीने कैसे काटे जाए? अब यह प्रश्न माँ-बाबूजी के समक्ष उपस्थित हो गया। हमारे गांव का ही एक लड़का, तुमसर में बारहवीं कक्षा में पढ़ता था। माँ ने उससे मदद मांगने का निर्णय लिया तथा मेरे साथ तुमसर में रहने के विषय में पूछा? उसने हामी भर दी और मैंने जैसे-तैसे बचे हुए अपने समय को उसके साथ रहकर निकाला।

उसे पढ़ाई में तकलीफ न हो इसलिए शांत रहता, झाड़ू पोछा, पानी भरना, खाना बनाने में मदद करना जैसे घर के कामों में हाथ बंटाता। मैं जिस कमरे में रहता था, वह तुमसर में सारंगा टॉकीज के ठीक सामने था। टॉकीज की दीवारों पर फिल्म के पोस्टर टंगे रहते थे। मैं रोज पोस्टर देखकर स्कूल जाता था। वहीं से मुझे सिनेमा में दिलचस्पी हुई।

पांचवी की परीक्षा ख़त्म होने के बाद मैं गांव चला गया। गर्मी की छुट्टियाँ खत्म होते ही मैं पाँचवी से छठी कक्षा में पहुँच गया। अब फिर से मेरे रहने का प्रश्न उपस्थित हुआ?

माँ की मौसेरी बहन तुमसर में ही रहती थी। माँ मुझे उसके घर लेकर गई। उसे अपनी परेशानी के बारे में बताया। माँ ने मौसी से कहा-- अगर.. तारेंद्र तुम्हारी नज़रों के सामने रहेगा तो मुझे चिंता नहीं होगी। मौसी ने माँ की बात मान ली और उसने मुझे अपने घर रखने की सहमति दिखाई।

मौसी के घर रहने के विचार से मैं जितना असमंजस में था, उससे कहीं ज्यादा मुझे मौसी के यहां छोड़ते समय, माँ बेचैन थी। तुम्हारी वजह से किसी को तकलीफ न हो इसलिए अच्छे से रहना, मस्ती मत करना, शांत रहना, खुद को

संभालने के बारे में बार-बार मुझे समझा रही थी। मुझे वहां छोड़कर जाते समय माँ की आँखों में आँसू थे।

"माँ सबकी जगह ले सकती है लेकिन माँ की जगह कोई नहीं ले सकता।" शायद कहीं इसी वजह से तो नहीं!... लेकिन मौसी के घर रहने का मेरा मन ही नहीं करता था। वैसे तो मौसी का परिवार बहुत बड़ा था और उनके बच्चे भी थे, परंतु मौसी के परिवार में हमेशा परायापन महसूस होता था। फिर भी चार-पाँच महीने, मैंने जैसे-तैसे मौसी के घर निकाले।

दिवाली की छुट्टियों में जब मैं गांव, अपने घर आया, तब माँ को मैंने स्पष्ट रूप से बता दिया, मुझे मौसी के घर नहीं रहना है वहां मुझे बिलकुल अच्छा नहीं लगता मेरी बात सुनकर माँ को पहले बहुत धक्का लगा। उसने बड़े विश्वास से मुझे उनके घर रखा था। मेरा मुरझाया हुआ चेहरा देखकर, उसे बहुत कुछ समझ आ गया था। माँ तो माँ होती है सब पहचान लेती है। शायद इसीलिए वह मुझ पर बिल्कुल नाराज नहीं हुई। मुझे बहुत समझाने का प्रयास किया, परंतु कोई जोर-जबरदस्ती नहीं की।

मैं छठी कक्षा में ही था। मैंने इतनी-सी उम्र में भी पैसेंजर ट्रेन से दूसरे गांव स्कूल जाने की तैयारी दिखाई। उस समय माँ ने मेरे विचारों पर गौर किया और ट्रेन से सफर की अनुमति दे दी। आज यह सब देखकर मुझे बहुत आश्चर्य महसूस होता है। **"यदि हमें हटके दिखना है तो, कुछ अलग-अद्वितीय करके दिखाना पड़ता है"**- यह मेरे मासूम बालमन ने समझ लिया था।

अब मुंडीकोटा से तुमसर का सफर शुरू हो गया। पैसेंजर ट्रेन का समय निश्चित नहीं था। इसलिए कभी स्कूल में पहुँचते समय देर हो जाती, तो कभी घर आने में। मुंडीकोटा से तुमसर आने-जाने के लिए केवल तीन पैसेंजर ट्रेन ही चलती, इसलिए उन पैसेंजर ट्रेन के हिसाब से, मैंने अपना टाइम-टेबल बना लिया और इस तरह **"वक्त ने मुझे अकेले चलना सिखा दिया।"**

स्कूल साढ़े-ग्यारह बजे होती। रोज सुबह स्कूल के लिए मुझे सुबह आठ बजे की पैसेंजर ट्रेन पकड़नी पड़ती थी। पैसेंजर यदि समय पर आए तो, मैं साढ़े आठ बजे तक देवाड़ी स्टेशन पर पहुँच जाता। अक्सर, दो घंटे पहले ही पहुँच जाने के कारण, मैं वहीं स्टेशन के बेंच पर बैठकर सफर करते लोगों को निहारता या बैठकर अपनी पढ़ाई करता। शायद वही पर **"मैंने इंसानों को पहचानने की कला सीखी हो।"**

रेलवे स्टेशन से स्कूल बहुत दूर था, इसलिए किसी भी परिस्थिति में पैदल जाना संभव नहीं था। देवाड़ी रेलवे स्टेशन से बस पकड़कर तुमसर के बस स्टैंड और बस से उतरने के बाद स्कूल तक पैदल जाना पड़ता था। दिनभर स्कूल में पढ़ाई और शाम के समय पाँच बजे छुट्टी होती। स्कूल छूटने के बाद फिर से बस स्टैंड तक पैदल चलना, बस पकड़ना, और रेलवे स्टेशन तक पहुँचना। रात को आठ बजे की पैसेंजर ट्रेन के सिवा और कोई दूसरा रास्ता भी नहीं था। यदि कभी ट्रेन छूट जाए तो स्कूल जाने का कोई दूसरा साधन भी नहीं था।

स्कूल के बच्चे, स्कूल की छुट्टी होने पर भागदौड़ कर घर पहुँचते। मेरे विषय में बिल्कुल उल्टा था। मुझे वापस जाते समय ट्रेन की राह देखना और अधिकतर समय रेलवे स्टेशन पर ही रुकना पड़ता था। मुंडीकोटा की ओर आनेवाली आठ बजे की ट्रेन कई बार दस से ग्यारह बजे या मध्यरात्रि में आती। कभी-कभी तो घर पहुँचने में मध्यान्ह बारह बज जाते या रात हो जाती। पर मैनें कभी किसी बात की शिकायत नहीं की। क्योंकि मुझे पता था - मंजिल बहुत दूर हैं और काफ़ी सफ़र तय करना अभी बाकी है।

पढ़ाई का लक्ष्य सामने रख, किसी भी परिस्थिति को पार करते हुए मुझे जीवन में आगे बढ़ना था। **पढ़े-लिखे, सूट-बूट में दिखते लोग मेरे मन को आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करते थे।** अक्सर इतने छोटे-से बच्चे की भागदौड़ भरी जिंदगी और परेशानी देख माँ का मन बहुत दु:खी होता, परंतु वह भी क्या करे? इसलिए सब मन ही मन सहन करना पड़ा।

माँ-बाबूजी दोनों एक भी ग्राहक वापस न चला जाए, इसलिए दिन-रात काम में व्यस्त रहते। उनकी दिन-रात, जी-तोड़ मेहनत हम पाँचो भाई देखते। पैसेंजर से भागदौड़-कर, थककर आए, अपने बच्चे यानी मुझे कभी-कभी आँख भरकर देख भी नहीं पाते थे।

हम पाँचो भाई दुकान के कामों के साथ ही माँ की मदद हो, इसलिए घर की चीज़े समेटते-संवारते थे। माँ हम सभी के लिए रात का खाना बड़े ही चाव से बनाती। हमें खाना परोस कर ही चाहिए, कभी ऐसी जिद नहीं की। हम सभी भाई रात को स्वयं के हाथों से खाना खाकर, सोने की तैयारी में या कभी-कभार सो गए होते। माँ बाबूजी को अकसर घर आने में देर हो जाती थी। माँ-बाबूजी बहुत मन लगाकर हमारे लिए दिन-रात मेहनत करते है, यह देख वह सार्थक होनी चाहिए इसलिए मैंने बहुत बड़ा आदमी बनने का दृढ़निश्चय किया।

हमें पढ़ाई में बचपन से ही रुचि होने के कारण पढ़ाई करो यह कहने की नौबत कभी माँ-बाबूजी पर नहीं आने दी। वैसे भी उनके पास हमारी पढ़ाई की ओर ध्यान देने का समय भी नहीं था। वे कहा करते - "तुम्हारी पढ़ाई हमारी समझ के बाहर है बेटा!!... और हमारे पास ध्यान देने का समय भी नहीं, इसलिए जो भी करो पूरी लगन से करना!..", उनका यह विश्वास मैं और मेरे भाइयों ने हमेशा बनाए रखा तथा मेहनत और लगन से पढ़ाई करने लगे।

माँ ने हमें स्वयं अपना काम करने की आदत बचपन से ही लगाई। हम पाँचों भाइयों ने यह काम लड़कियों का है या लड़कों का ऐसा कभी भेदभाव नहीं किया। माँ की मदद हो जाए, इसलिए जिससे जैसे जमता वह उस काम में मदद करता। खाना बनाने से लेकर-कपड़े धोने तक, सभी काम हम सभी भाई धीरे-धीरे करना सीख गए। जीवन में आत्मनिर्भरता के दृष्टिकोण से इसका बहुत अधिक लाभ हमें मिला। जीवन संघर्षों का दरिया है, उसे हमें अपने-अपने नजरिये से पार करना पड़ता हैं। इसका फायदा अब समझ में आता है।

अच्छी-खासी कमाई हो सके ऐसी पूर्वजों द्वारा प्राप्त कोई खेती हमारे यहां नहीं थी। दुकान से थोड़ी-बहुत आमदनी हो जाती। ट्रांसफर लेकर स्कूल में नौकरी के लिए आए शिक्षक, कंपनी और स्टेशन पर रोजाना मजदूरी का काम करनेवाले लोगों के खाने का डिब्बा माँ स्वयं अपने हाथों से तैयार करती। हमें डिब्बा पहुँचाने का काम करना पड़ता था। जिससे उन लोगों को घर के खाने का स्वाद भी मिलता और कमाए गए पैसों से हमें घर चलाने में मदद मिल जाती। लेकिन यह आमदनी इतनी कम थी कि इस में हमारी जरूरतों को पूरा कर पाना संभव नही था। लेकिन माँ-बाबूजी को अपने बच्चों की पढ़ाई का बढ़ता खर्चा देख हाथ पर हाथ धरकर बैठना सही नहीं लगा तथा दुकान के भरोसे घर कैसे चलाएं? यह विचार उनके मन को बैचैन करने लगा। माँ बहुत मेहनती थी, वह मेहनत करने से कभी नहीं घबराती। जो काम मिले उसे करने के लिए वह हमेशा तत्पर रहती थी। मेहनत ही हमें सफलता दिलाती है, उसमे वक्त और हालात को बदलने की ताकत होती है। यह माँ जानती थी।

गर्मियों के दिन थे। उस समय जंगल में तेंदूपत्ता बिनने का काम बड़े पैमाने पर चलता। गर्मियों के उन दो महीनों में बाबूजी तेंदूपत्ता की पत्तियां बिनने के लिए जाते। अप्रैल और मई की कड़कड़ाती गर्मी में दिनभर तेंदूपत्ता बिनने का काम करते थे। जिससे महीने के आखिर में जैसे-तैसे तीन-सौ से चार-सौ रुपये मिलते। दिन-रात ईमानदारी से मेहनत करना बस यही लक्ष्य मन में था।

महाराष्ट्र में होली के दिन छोटे बच्चों के गले में चीनी की गाठियां (मालाएँ) पहनाने की परंपरा है। होली जब नजदीक आती है, तब बीस से पच्चीस दिन पहले ही होली के लिए लगने वाली शक्कर गाठियां बनाने का काम माँ हर साल करती। इससे गांव की चार-पाँच गरीब महिलाओं को रोजगार मिलता।

गाठियां बनाने का काम जितना आसान लगता है, उतना आसान नहीं था। कड़कड़ाती गरम भट्टी के पास, गर्मी के दिनों में, हर रोज बारह से चौदह घंटे बैठकर काम करना पड़ता। चीनी के गरमा-गरम चासनी को साँचें में डालकर गाठियां बनाने का मुश्किल काम यह सभी महिलाएँ पूरी लगन से करती थी।

माँ अपने आप को इस कार्य में पूरी तरह समर्पित कर देती। माँ बीस से पच्चीस दिनों में करीब-करीब तीस क्विंटल के आसपास शक्कर गाठियां बनाती हालांकि अन्य स्थान के कई प्रमुख कारीगर दिन भर में अधिक से अधिक पचास किलो की गाठियां ही बनाते थे। जैसे-जैसे होली नजदीक आती, गाठियों की माँग बढ़ जाती और हमें पैसे अधिक मिलने लगते।

माँ एक या दो घंटे ही सोती और रात मे जागकर गाठियाँ बनाती थी। दिन रात अठारह से बीस घंटे तक काम करके भी माँ ने थकावट को कभी अपने ऊपर हावी नहीं होने दिया। माँ का यह कठोर परिश्रम देखकर, हमें बहुत प्रोत्साहन मिलता। जब हम कोई काम करने की इच्छा करते है तो शक्ति अपने आप ही आ जाती है। माँ का स्वभाव हमें यह सिखा गया।

हम गांव के आसपास के दुकानदारों को थोक भाव से वह गाठियां बेचते। थोक भाव में बेची गई गठीयों से पैसे कम मिलते थे, इसलिए हम सभी अपने बाबूजी के साथ साप्ताहिक बाजार में दुकान लगाकर गाठियां चिल्लर भाव से बेचते थे। एक किलो पर अधिक से एक सवा रुपया अधिक मिलता, परंतु वह एक सवा रुपया भी हमारे लिए उस समय बहुत कीमती था। खून-पसीने की कमाई से, कमाए गए पैसों की कीमत तभी से हमें समझ आने लगी थी। क्योंकि राजा बनना हो तो, गुलाम की तरह मेहनत करनी पड़ती हैं।

गाठियां बेचकर और तेंदूपत्ता बिनने से मिले हुए पैसे ही साल भर के जीवननिर्वाह की हमारे लिए जमापूँजी होती। माँ बहुत समझदार थी। जीवन में अचानक आनेवाली कठिनाइयों और दवाइयों के लिए ये पैसे बचा कर रखे जाते थे, जिससे समय आने पर कोई काम न रुक जाए।

उसी गांव में बीड़ी कंपनी के आसपास एक बंजर खेती थी। माँ-बाबूजी ने बटई या किराए से लेकर खेती का कार्य भी किया। खेत में बहुत मेहनत-मशक्कत कर उसे उपजाऊ बनाया, उस पर हरी-भरी लहलहाती फसल तैयार की। मेहनत का कोई विकल्प नहीं होता, परिस्थिति बहुत कमजोर होते हुए भी कालांतर में एक-एक पैसा जोड़कर अपने हक की थोड़ी-बहुत खेती माँ ने खरीद ली और फिर से एक नई शुरुआत की।

"यूँ ही नहीं मिलती राही को मंजिल एक जुनून-सा दिल में जगाना पड़ता है, पूछा चिड़िया से कैसे बना आशियाना तो बोली भरनी पड़ती है उडान बार-बार, तिनका-तिनका उठाना पड़ता है।" (अज्ञात) बस यही ध्यान मन में था और हमारे पैर अपने-आप आगे बढ़ने लगे। हमारे विषय में भी यह बिल्कुल सटीक रहा। शरीर मेहनत करने से नहीं घबराता है। माँ-बाबूजी के कदमों पर कदम रखकर हम सभी भाई भी उनके इसी मेहनती स्वभाव को स्वीकार कर चुके थे।

वैनगंगा नदी के किनारे माडगी गांव में कार्तिक महीने में पंद्रह दिन का मेला भरता। इस मेले में हम भी बड़े ही उत्साह से फूल, बेलपत्ती, नारियल, पेड़ा, कपूर, अगरबत्ती आदि पूजा का सामान बेचने के लिए दुकान लगाते थे। शनिवार और रविवार के दिन छुट्टी होती थी। हमारी दो दुकान होने से काफी फायदा मिलने लगा। कई सालों तक यही क्रम चलता रहा। इसी तरह घर का खर्च चलाने में हम माँ-बाबूजी की मदद करते थे। माँ-बाबूजी को गांव में हमारी चाय की दुकान की देखरेख करनी पड़ती थी।

हमने मेले में पूजा के सामान की दूसरी दुकान लगाई थी, उस पर रोज सामान लाना-ले जाना और ध्यान देना माँ बाबूजी के लिए संभव नहीं हो पाता था। मैं उस दुकान पर ध्यान दे सकूँ, इसलिए मुझे दादी के साथ वही पर रहना पड़ता था। ऐसे समय रात भर दुकान में खुले आसमान के नीचे ही हम सो जाते और हम कर भी क्या सकते थे....?

सुबह-सुबह बाबूजी साइकिल से दुकान में लगने वाला सामान के साथ हमारे खाने का डिब्बा लेकर आते। मैं सायकिल से आठ किलोमीटर का सफर तय कर, माडगी से तुमसर अपने स्कूल जाता था। स्कूल खत्म होने के बाद पाँच साढ़े-पाँच बजे, फिर से दुकान का ध्यान रखने वापस आता और रात भर वहीं दुकान में अपनी दादी के साथ सो जाता था। बाबूजी मुंडीकोटा की ओर निकल जाते थे। यही क्रम चलता रहा। जब तक मेला लगा रहता, तब तक घर जाना मेरे

लिए संभव नहीं हो पाता था। सुबह सूर्योदय के समय नदी का पानी थोड़ा गुनगुना रहता था। नदी के किनारे बैठकर, उस गुनगुने पानी से नहाने में, उस समय बड़ा मजा आता था। अब जीवन में जो भी परिस्थिति सामने आए, उसे स्वीकार कर उसमें खुश रहना मैंने सीख लिया था।

मेरी उम्र के बच्चे, उस मेले में बहुत मस्ती मजाक करते दिखते। उन्हें तथा उनकी सुख-सुविधाओं देखकर हमारे ही भाग्य में ऐसे दिन क्यों? इस तरह के प्रश्न कभी माँ-बाबूजी के सामने हमने नहीं उठाए। स्कूल के कई जाने-पहचाने चेहरे उस यात्रा में मिलते। उनके सामने दुकान में वस्तु बेचने की शर्म या संकोच कभी नहीं किया। कोई भी काम छोटा या बड़ा नहीं होता, तो काम करना महत्वपूर्ण होता है। माँ-बाबूजी के दिए संस्कारों से ही, हम यह सीखते गए।

कंधे से कंधा मिलाकर मेहनत करने के लिए तत्पर देख, माँ-बाबूजी को हम पर बड़ा गर्व महसूस होता। माँ के हर निर्णय में चाहे वह खेत से संबधित हो या फिर हमारे जीवन से जुड़ा कोई अहम प्रश्न हो, माँ के हर निर्णय का स्वागत बाबूजी करते और उनके साथ खड़े रहते थे। कहते हैं ना - "अपने साथीदार का साथ हो तो, बड़े से बड़े संकट की परछाई भी हमें छू तक नहीं सकती।" माँ को बाबूजी का हर काम में बहुत सहयोग मिला। जो हमें पाल-पोसकर बड़ा करते समय, सही दिशा निर्धारित करने में उपयोगी रहा।

इसलिए कोई भी कार्य करते समय, हमारे मन में कभी किसी तरह का डर नहीं आया। कईबार मुसीबत के समय हमें पीछे भी हटना पड़ा। पर दृढ़ता से खड़े रहने की शक्ति और उसी जोश के साथ आगे बढ़ने की प्रेरणा हमें अपने आप तैयार करनी पड़ी। सुख-दु:ख एक ही सिक्के के दो पहलू होते हैं। हमारे नसीब में कब, क्या आएगा? इसका विचार करने से बेहतर है कि ईमानदारी से हम अपना काम करते रहे। यही जीवन की परिस्थितियों ने हमें सिखाया था।

मुंडीकोटा का जीवन

माँ बहुत ही स्वादिष्ट खाना बनाती थी। उनके हाथ का खाना कोई एक बार खाए, तो उंगलिया चाटने लगता। उन्हें बड़े उत्साह से नए-नए स्वादिष्ट पकवान बनाकर अपने बच्चों को खिलाने में बहुत मजा आता था।

उस समय मीठे पदार्थ घर में बहुत अधिक नहीं बनते थे। आज के समान यु-टुयब चैनल भी नहीं थे। शादी समारोह में बनाए जाने वाले गुलाबजामुन हो या बालूशाही, माँ बड़े ही चाव से घर में बना कर देखती थी। माँ को लगता सिर्फ बिगड़ेंगे ही ना और ज्यादा से ज्यादा क्या होगा? लेकिन बार-बार कोशिश कर एक दिन वह अवश्य अच्छा बनेगा। माँ का यह कहना मुझे हमेशा याद आता। खाना बनाने की रुचि माँ के हाथ के हर पदार्थ को स्वादिष्ट बना देती। कोशिश की जाए तो हर चीज संभव होती है।

गांव में शादी हो या कोई समारोह माँ को याद से खाना बनाने के लिए बुलाया जाता। उस समय आचारी या खाना बनाने वाली बाई रखने की परंपरा नहीं थी। बड़े-बड़े बर्तनों में पचास-सौ लोगों के खाने का बिल्कुल सही अंदाजा माँ लगा लेती थी।

"चूल्हे को निमंत्रण" ऐसा यदि कहा गया तो, माँ को खाना बनाने के लिए अवश्य बुलाया जाता और मदद के लिए माँ हमेशा अग्रसर रहती। माँ ने ऐसी कितनी ही शादियों और समारोह के अवसरों पर खाना बनाने की जिम्मेदारी कई बार अकेले ही उठाई।

माँ पैसों को बहुत संभाल कर खर्चा करती। व्यर्थ पैसा खर्च करना उसे बिल्कुल पसंद नहीं था। उसके पास नाममात्र केवल दो-चार साड़ियाँ ही थी। माँ का कहना था - शादी या किसी समारोह में, खाना बनाने की मदद के लिए ही तो जाना है, वहां पर साड़ियाँ खराब ही होगी, फिर क्यों नई साड़ियों में पैसे व्यर्थ किए

जाए? इसलिए माँ ने कभी किसी समारोह में पहनने के लिए नई साड़ियां जान-बूझकर नहीं खरीदी।

माँ कोमल हृदय, दयालु और बहुत प्यारी थी। सबका ख्याल रख, सबसे प्रेम भाव से व्यवहार करती, परंतु उसे किसी तरह का अन्याय सहन नहीं होता था। हमारे गांव में हमारी दुकान के सामने नवरात्र के समय गांव के लोगों ने दुर्गा देवी की स्थापना की जहां रोज आरती और पूजा पाठ होता था।

एक हट्टा-कट्टा गुंडा आदमी रोज दारु पीकर गालियाँ देता। पंडाल में जो महिलाएं थी, उनके सामने वह अजीब-सी अशोभनीय हरकते करता। गांव के सभी लोग उससे घबराते थे। कहते हैं ना "**नंगे से खुदा भी डरे।**" माँ को उस आदमी का व्यवहार बुरा लगता और उसे गुस्सा भी बहुत आता, परंतु माँ..! अकेली क्या करती?

एक दिन माँ ने गांव की सभी महिलाओं को बुलाकर, उस आदमी को सबक सिखाने की योजना बनाई। उस आदमी के पंडाल में आते ही, गांव की सभी महिलाओं ने उसकी तरफ मोर्चा घुमाया। लाठियाँ, झाड़ू हाथ में लेकर बेरहमी से पिटाई कर उसकी हालत खराब कर दी। माँ के नेतृत्व में यह मुहिम सफल रही। उस गुंडे आदमी को अच्छा सबक मिला। इसके बाद वह सज्जन व्यक्ति की तरह सभी से व्यवहार करने लगा।

जब मैं तुमसर से गांव में आया, माँ के इस चंडीका अवतार का किस्सा, क्रांति ने मुझे हंसते - हंसते लोटपोट होकर माँ पर बड़ा गर्व करते हुए सुनाया। तब से मजाक-मजाक में क्रांति ने माँ को "झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई" बोलना शुरु कर दिया। अगर कुछ करने की इच्छा हो तो असंभव कुछ नहीं होता, इस बात का अनुभव आया।

माँ का भगवान पर अटूट विश्वास था। माँ अपने काम में ईश्वर को ढूँढती। इंसान-इंसान की मदद के लिए नहीं आता, परंतु ईश्वर अवश्य दौड़कर आते है। अच्छे कर्म करो, ईश्वर हमेशा आपके साथ खड़े रहते हैं।

"**अजगर करे न चाकरी पंछी करे न काम। दास मलूका कह गए, सबके दाता राम।**" हम हाथ पर हाथ धरकर बैठे और हमारे काम बन जाए, ऐसा जीवन में कभी नहीं होता। केवल भगवान भरोसे रहने से कभी खाने की थाली आपके सामने अपने आप नहीं आ जाती तो उसके लिए काम को पूजा समझकर करना पड़ता है।

भगवान पर श्रद्धा अवश्य हो परंतु श्रद्धा का रूपांतर अंधश्रद्धा में नहीं होना चाहिए इसका ध्यान हमें खुद ही रखना पड़ता है। पुस्तकों में विद्या का पंख या मोरपंख रखकर हम बुद्धिमान बनते हैं, ऐसा नहीं होता बल्कि उसके लिए पढ़ाई और कड़ी मेहनत करनी पड़ती है। "अगर जिंदगी में कुछ पाना हो तो तरीके बदलो इरादे नहीं।" यही विश्वास माँ ने हमें अपने अंदर जगाना सिखाया।

एक दिन जीतू साइकिल से चावल और सब्जी आदि सब सामान लेने के लिए गया और रास्ते में साइकिल से वापस आते समय गिर गया। उसकी लाई सभी चीजें जमीन पर गिरकर अस्त-व्यस्त हो गई। यह महसूस करते हुए कि नुकसान हो चुका है, वह रोता हुआ घर आया। माँ को बताने पर उसने कहा, "बेटा, कब कौन सा दिन कैसा आएगा? हम नहीं बता सकते। आज पानी पीकर सोना पड़ा, एक दिन हम अपने मेहनत के भरोसे कमाए हुए पैसों से खरीद कर हँसी-खुशी खाना खाकर सोएंगे। माँ की बातों में कितनी सच्चाई थी। जीवन में आनेवाली परिस्थितियों पर रोते बैठने से अच्छा है, परिस्थिति को मात देना सीखना चाहिए। अगर हम अपने आप पर यकीन करते है, तो अँधेरे में भी रास्ते मिल ही जाते है।

हमारी प्राथमिक स्कूल एक किलोमीटर अंतर पर स्थित मुंडीकोटा गांव में थी। बचपन से ही स्कूल में पैदल ही जाना पड़ता। जीवन में कभी कमाई के लिए दूर परदेस में भी जाना पड़ सकता था। शायद कहीं इसीलिए तो नहीं...! "हमें हमारी बचपन की पढ़ाई भी दूर जाकर पूरी करनी पड़ी? क्या पता....!"

आज सोचने पर प्रश्नचिन्ह उपस्थित होता है कि कहीं यह सब इसीलिए तो नहीं हुआ। कभी-कभी जीवन में घटित होने वाली पूर्व घटनाओं पर भाग्य की ही चलती है। इस पर विश्वास पक्का होने लगता है। हमारे बच्चे कभी कोई बुरा काम कर ही नहीं सकते। माँ-बाबूजी का अपने पाँचों बच्चों पर अटूट विश्वास ही हमें गलत मार्ग पर जाने से रोकता था। जो आज हमारी सफलता की नींव है।

मैं पाँचवी-छठी कक्षा से ही नागपुर, तुमसर और वर्धा अकेले ही बिना किसी डर के सफर करता। गर्मी की छुट्टियों में रिश्तेदारों के यहां अकेले ही रहने चला जाता। मुझे याद है, हमारे गांव में एक योगी बाबा आते थे। जो हमारी दुकान पर अकसर आते। मुझे उनके विषय में बहुत उत्सुकता रहती थी। एक बार मैंने माँ से योगी बाबा के साथ आश्रम में जाने के बारे में पूछा। माँ ने मेरी इच्छा से मुझे जबलपुर उनके आश्रम में भेज दिया।

मैंने अपने जीवन में अनुशासन का महत्व वहां जाकर सीखा। रामायण, महाभारत जैसे ग्रंथ वहां पढ़ने के लिए मिले, प्रार्थना, योगा, ध्यान लगाना, और श्लोकों का स्मरण, प्रात:काल जागने की आदत, उठने-बैठने के संस्कार और कठोर नियमावली का पालन करना आदि आदतों की पहचान मुझे वहां रहने के कारण हुई। अनुशासन हमारे चरित्र निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता हैं।

मैं अनुशासित जीवन के महत्व को समझने लगा। आगे आने वाले जीवन में, मैं अकेले सफर करते समय कभी नहीं घबराया। अनजान जगह पर अपना कैसे, क्या होगा? किसी भी परिस्थिति में कभी डगमगाया नहीं। मुझे जीवन के सफर में जो भी उपलब्ध हुआ, उसके अनुसार मैंने खुद को ढाल लिया।

हमारे पास आवश्यकतानुसार भी पैसे नहीं थे। स्कूल शुरु हुए दो महीने से अधिक समय हो गया। पंद्रह अगस्त, स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर जीतू और मेरे लिए स्कूल का ड्रेस लेना था। उस समय बड़े भाई के छोटे कपड़ों को उनके छोटे भाई खुशी-खुशी पहन लेते थे, वही नियम हमारे घर में भी था।

हम दोनों भाई माँ के साथ स्कूल की ड्रेस लेने दुकान में गए। माँ ने हम लोगों के लिए एक बड़ी नाप का ड्रेस पसंद किया, जैसी की परंपरा ही थी। शायद बढ़ती उम्र के साथ वह कपड़े छोटे न हो इस को ध्यान में रखते हुए ऐसा किया जाता। पैसे देते समय माँ दुकानदार से बोली, क्या आप एक ड्रेस के पैसे उधार रख सकते हैं? दुकानदार ने उधारी बंद इस बोर्ड की तरफ उँगली दिखाते हुए - मना कर दिया। माँ ने बहुत बिनती की पर दुकानदार उधार न देने के निर्णय पर अड़िग रहा।

माँ का उदास चेहरा देखकर आज भी वे क्षण याद आते है तो, अपने आपको बहुत असहाय महसूस करता हूँ। माँ झट-से उस दुकान से बाहर निकली। हम दोनों माँ के पीछे-पीछे चल रहे थे। माँ का वह चेहरा नजरों के सामने से हटाए-हट नहीं रहा था। दुकानदार के ऊपर बहुत गुस्सा आया। दुकानदार ने हमारी माँ का अपमान किया यह कसक, मन को कचोट रही थी।

उसी समय मन में दृढ़ निश्चय किया कि अपने आपको को इतना लायक बनाना है कि छोटी-छोटी जीवनावश्यक चीजों के लिए "उधारी बंद"- इस बोर्ड की तरफ देखकर, किसी दुकान से वापस न जाना पड़े। इस तरह छोटे-छोटे अनुभवों से जीवन में अनेक सबक मिलते गए।

कभी-कभी लोगों का बुरा व्यवहार, उनके व्यंग बाण, हमें अंदर तक आहत कर देते है। शायद यह नियति का ही हिस्सा हो, ऐसा मुझे हमेशा लगता। क्योंकि ऐसी घटनाओं की वजह से ही इंसान जीवन में कुछ संकल्प लेकर आगे बढ़ता है और उस पल में लिए संकल्प, भीष्म प्रतिज्ञा के समान अटल होते हैं। "दृढ़ संकल्प सफ़लता का अहम हिस्सा होता हैं।" ऐसी घटनाओं से हमारे अंदर सकारात्मक दृष्टिकोण का निर्माण होता है और हमें आगे बढ़ने की प्रेरणा मिलती है। ऐसे ही नई-नई चुनौतियों को लेकर जीवन का एक-एक दिन सामने आने लगा।

स्नेह की ड़ोर से रिश्तो को जोड़ती माँ

"रहिमन धागा प्रेम का
मत तोड़ो चटकाय
टूटे से फिर ना जुड़े
जुड़े फिर गाँठ पड़ी जाय।"

प्रेम का धागा, विश्वास पर टिका होता है। जो एक बार टूट जाए तो, उसमें गाँठ पड़ जाती है। गाँठ किसी भी तरह से अच्छी नहीं होती। इसी तरह रहीम जी के दोहे को मैंने माँ के जीवन में रिश्तो को जोड़ते हुए अपनाते देखा।

रिश्तो को सँभालना माँ को बहुत अच्छा लगता। माँ हमेशा हमें बताती थी कि हम साथ लेकर कुछ नहीं जाते, हमें सबकुछ यहीं पर रखकर जाना पड़ता है। बस प्यार के दो-शब्द और हमारे सत्कर्म हमारे साथ रहते हैं।

रोज के भागदौड़ भरे जीवन में अपने परिवार की तरफ कहीं अनदेखी न हो जाए? इसका माँ बहुत ध्यान रखतीं। माँ दादा-दादी के प्रति अपने कर्तव्यों का निर्वाह जी-जान से करती। दादाजी के जीवन के अंतिम पड़ाव पर माँ ने उनका बहुत ध्यान रखा। दादाजी अपने जीवन के अंतिम दो वर्ष में बिस्तर पर ही थे। उनके जीवन के अंतिम क्षण तक दादाजी की बहुत सेवा की। हमारे घर चाचाजी भी रहते थे, जो अक्सर बिमार ही रहते थे।

माँ और दादी में बहुत नहीं बनती थी। उनके बीच भी सास-बहू की हमेशा की कहानी रहती परंतु माँ को दादी - दादाजी, चाचाजी को कभी पलटकर जवाब देते हुए या उनके साथ बुरा व्यवहार करते हमने कभी नहीं देखा।

हम जो सत्कर्म करते हैं वही हमारे जीवन की जमा पूँजी होती है। यह अपने व्यवहार से माँ हमें समझाने का प्रयास करती। हमारी तरह ही वह अपने भाई और बहनों के बच्चों पर भी बहुत स्नेह रखती। माँ की बड़ी बहन जिन्हें हम

"बड़ी-माँ " कहकर बुलाते थे। उन्हें पाँच लड़कियाँ और एक लड़का जिसका नाम वासुदेव, जो मुझ से आठ से दस-साल बड़े है। वासुदेव भैय्या के जीवन में माँ का स्थान बहुत अहम था। उनके लिए माँ जो कहे वही सर्वोपरि था।

माँ पढाई-लिखाई को बहुत महत्व देती थी। उसके बच्चों के समान ही भाई और बहन के बच्चों ने भी पढ़-लिख कर जीवन में बहुत आगे जाना चाहिए, ऐसा माँ का मानना था। पढ़ाई के साथ-साथ सांसारिक मूल्यों की दृष्टि से भी वे सभी माँ के संस्कारों में पले-बड़े थे। शायद यह उनके ट्रेनिंग का ही हिस्सा था। "माँ की ट्रेनिंग" कहकर हम बहुत हँसी-मजाक करते थे।

मेरी सभी मौसेरी बहनों के शादी की समस्त जिम्मेदारियों को माँ ने बखूबी निभाया। सभी की शादियाँ बिना किसी विघ्न के अच्छे से पार हो गई। आज सभी अपने-अपने सुखी सांसारिक जीवन में व्यस्त है।

अपने और पराए का भेदभाव माँ ने कभी नहीं किया। मेरी बुआ का लड़का शंकर किसी कंपनी में नौकरी करते समय हमारे यहां कई सालों तक रहा। माँ ने उसे भी पूरा सहयोग दिया।

मारुति मामा का बेटा पप्पू भी हमारे घर अपनी पढ़ाई के लिए बहुत सालों तक रहा। बच्चे अपने हो या रिश्तेदारों के माँ ने कभी परायापन नहीं दिखाया, बल्कि सभी पर समान प्रेमभाव रखा। कभी-कभी समय पड़ने पर माँ उन्हें डांट भी लगाती, तो कभी बड़े प्यार से अपने पास बुला कर समझाया करती। माँ का आदरयुक्त डर सभी को था।

हमारे गांव के स्कूल में एक चपरासी मामा थे। उन्हें नीलू नाम की लड़की थी। हम उसे नीलूदीदी कहकर बुलाते, जो हम पांचों भाइयों को राखी बांधती। नीलू दीदी की शादी में जितनी हो सके, माँ ने मदद की। हम पढ़ाई के लिए बाहर निकले, तब वासुदेव भैय्या की लड़की शोभादीदी और नीलूदीदी हर साल हमारे यहां आकर बालू और छोटू को याद से राखी बांधती थी।

तिरोडा के पास स्थित बेलाटी गांव से हर हफ्ते एक नाई हमारे गांव में आता था, उन्हें सभी लोग उसे कवडू भैय्या कहते थे। कवडू भैय्या के आते ही हम उसके सामने बाल काटने एक-एक कर बैठ जाते थे। हमारे बाबूजी और हम पाँचों भाइयों का मुंडन कवडू भैय्या ने ही किया, यह सब दादी हमें बताती तो हमें बड़ी खुशी होती।

कवडू भैय्या और हम लोगों में एक अपनेपन का रिश्ता बन गया था। कभी-कभी तो हम कवडू भैय्या के डिब्बे का खाना ही सफाचट कर जाते। उन्हें भूखा न रहना पड़े इसलिए माँ कवडू भैय्या को हमारे घर का खाना देती। कई बार कवडू भैय्या हमसे कटिंग के पैसे नहीं लेते थे। आवश्यकता के समय कई बार कवडू भैय्या ने, माँ को आर्थिक रूप से मदद की। बुरे वक्त में जिन्होंने हमारी मदद की उनके उपकारो को हमेशा याद रखना चाहिए, माँ हमें यही सिखाती थी।

कुछ सालों पहले जब हम भारत में आए थे। तब हम सभी भाई कवडू भैय्या से मिलने उनके बेलाटी गांव गए। शरीर के थकने से अब काम भी नहीं कर पाते थे। छडी के सहारे चलते। उन्हें छोटीसी आर्थिक मदद करने का हमने प्रयास किया। जिसे देखकर उनकी आँखें भर आयी और चेहरे से ख़ुशी साफ़ झलक रही थी। माँ की आँखों में उस क्षण जो एक समाधान हमने देखा वह शब्दों में बयां नहीं किया जा सकता। जीवन में कभी किसी के द्वारा की गई भलाई व्यर्थ नहीं जाती, वह किस रुप में लौटकर आयेगी ईश्वर ही जानते हैं।

जीवन में हर तरह का दिखावा आसान हैं, परंतु पैसों का नहीं। जीने के लिए पैसा बहुत ही महत्वपूर्ण है। कठिनाइयों के समय फूल न सही मगर उसकी एक पंखुड़ी के रूप में की गई छोटी-सी मदद भी लोगों को बड़ा आधार पहुँचाती हैं। आपकी असली शिक्षा आपके व्यवहार से दिखती है।

नौकरी लगने के बाद हम सभी भाईयों ने तुमसर में मुख्य रास्ते से लगकर एक बहुत बड़ा घर बनाया। जिस आटा चक्की के भरोसे हमारी तरक्की हुई, जीवन में हम आगे बढ़े, वह चक्की और घर वासुदेव भैय्या को बेचने का हमने निर्णय लिया।

अब वासुदेव भैया का परिवार बोरी गांव से तुमसर शहर में रहने के लिए आ गया है। वासुदेव भैय्या के बच्चों को स्कूल और कॉलेज जाना सबकुछ आसान हो गया है। जो तकलीफें हमने अपने बचपन में सही थी, अब उन बच्चों को उसका सामना नहीं करना पड़ेगा। वासुदेव भैय्या की एक बेटी डॉक्टर तथा दूसरी इंजिनियर बन गई है। साथ ही उनका बेटा अभियांत्रिकी की पढ़ाई कर रहा है।

ट्रेन का सफर: मुंडीकोटा से तुमसर की यादें

मैं हर रोज मुंडीकोटा से तुमसर अकेले ही पैसेंजर ट्रेन से स्कूल का सफर तय करने लगा। इतनी छोटी उम्र में पैसेंजर से दूसरे गांव जाकर पढ़ाई करने वाला उस क्षेत्र का मैं अकेला विद्यार्थी था। कुछ हटके करने की मन में भावना तथा अन्य लोगों से अलग होने का एहसास मुझे बहुत प्रेरित करने लगा था। **"विजेता कुछ अलग नही करते, वे अपने काम को अलग तरीके से करते है, ऐसा ही कुछ मुझे महसूस होने लगा।"**

नागपुर से गोंदिया के सफ़र में सिर्फ पैसेंजर ट्रेन ही मुंडीकोटा में रुकती थी, बाकी एक्सप्रेस ट्रेन धड़धड़ की आवाज करते हुए तेज गति से निकल जाती। मुंडीकोटा छोटा स्टेशन होने के कारण, सिर्फ नाममात्र तक ही सीमित था। कई बार ट्रेन प्लेटफार्म पर न ठहरकर बाहरी स्थान पर ही रुक जाती थी।

मैं ग्यारह-बारह साल का था। मेरी ऊँचाई कम होने के कारण ट्रेन में चढ़ते समय मुझे बहुत कसरत करनी पड़ती थी। कंधे पर स्कूल बैग के बोझ के साथ पैरों को ऊँचा कर हँन्डल (रॉड) को पकड़ने की कोशिश करते समय, मेरे हाथ नहीं पहुँच पाते, तब मैं बहुत बेबस महसूस करता था लेकिन आठवीं कक्षा में पहुँचने तक मेरी काफी अच्छे से प्रैक्टिस हो चुकी थी।

मुंडीकोटा से तुमसर का सफर तय करते समय, उस स्टेशन पर करीब-करीब तीन पैसेंजर ट्रेनें ही चलती थी। इसलिए उसके अनुसार ही मुझे अपना समय-पत्रक बनाना पड़ा। दोपहर साढ़े-ग्यारह बजे की स्कूल के लिए, सुबह आठ बजे की ट्रेन पकड़नी पड़ती। देवाड़ी स्टेशन पर वह साढ़े आठ बजे तक पहुँच जाती थी, तब तक मैं वहीं प्लेटफार्म पर बैठकर पढ़ाई करता था।

स्कूल के समय, मैं देवाड़ी से बस पकड़कर तुमसर के लिए निकलता। बस में बैठने के बाद उस समय विधायक और सांसदों के लिए आरक्षित रखी जानेवाली सीट को, मैं बड़े गर्व से पकड़ता। रोज का वही काम होने के कारण,

चलती ट्रेन में चढ़ने-उतरने की अच्छी-खासी आदत हो गई थी आँखों के सामने से निकलती ट्रेन भाग-भागकर पकड़ने की कला छठी-सातवीं कक्षा में ही, मैंने आत्मसात कर ली। धीरे-धीरे समय का गणित मुझे अच्छा जमने लगा था।

दिनभर की स्कूल पूरी कर, मैं फिर से देवाड़ी स्टेशन पर पहुँच जाता। साढ़े पाँच बजे की पैसेंजर ट्रेन आने तक, मुझे अपना समय वही बिताना पड़ता था। रात को साढ़े आठ बजे की पैसेंजर कई बार रात को दस या ग्यारह बजे आती जिससे मुझे, घर पहुँचने में बहुत देर हो जाती थी। घर, स्कूल और प्लेटफार्म यही मेरी दुनियाँ बन गई थी।

ट्रेन में चाय, समोसे, चने, पान बेचने वाले, प्लेटफार्म पर रहने वाले कुली सभी लोगों से मेरी अच्छी जान-पहचान और दोस्ती हो गई। कुछ गुंडे-बदमाश प्रवृत्ति के जिद्दी तथा बुरे समझे जानेवाले सभी लोग मेरे साथ अच्छा व्यवहार करते तथा छोटे भाई की तरह अपनापन दिखाते, जो मुझे उनके करीब ले जाता था।

रेल के एक स्टेशन से दूसरे स्टेशन तक जाने के रास्ते पर उनका ही राज चलता था। सभी लडके अच्छे के लिए अच्छे, तो बुरे के लिए बुरे थे। पूरी गैंग में एकता थी। किसी ने अगर तकलीफ दी तो, उसके लिए संकट आने पर दौड़कर मदद के लिए पहुँच जाते। एक-दूसरे को मदद करने के स्वभाव के कारण यदि गैंग में किसी बच्चे के लिए लड़ना पड़े, तो उसे न्याय दिलाने के लिए सभी एकजुट हो जाते।

झगड़े उनके जीवन का एक अहम हिस्सा कहा जाए, तो गलत नहीं होगा। कई बार उनकी गुंडागर्दी उनके हक के लिए, तो उनका गर्म मिजाजी स्वभाव, उनका धारदार शस्त्र था। उन्हें परिस्थिति ने सब कुछ सीखा दिया उम्र खेलने की है, लेकिन हालात ने बड़ा बना दिया। इस तरह व्यवहार करना शायद उनके काम की मजबूरी थी।

ट्रेन में सफर करनेवाले लोगों को चाय, चने, बेचकर मिलने वाली आमदनी ही उनके जीवननिर्वाह का साधन थी। "कमाएँगे तो खाएँगे " यह मूलमंत्र बचपन से देख रहा था। ट्रेन में की गई कमाई ही, उनके जीवननिर्वाह का साधन थी। यही मूलमंत्र शायद उनके और मेरे परिवार को जोड़ने वाली एक अहम कड़ी थी। उनके साथ अपनापन अधिक बढ़ गया था।

"अरे.. ऐ छोटू, कैसा है रे तू !... इधर आ ! चल बैठ !..."

उनका यह पूछना अपनापन दे जाता था। सभी लड़के मन से सच्चे ईमानदार, सामाजिक नियमों को ध्यान में रख काम करते, उनकी ईमानदारी और सच्चाई ही मुझे उनकी ओर अधिक आकर्षित करती थी। दोस्ती का मतलब समझने के लिए वैसे मैं बहुत छोटा था। लेकिन क्या अच्छा और क्या बुरा!.. इसकी योग्य परख मुझे उस समय अवश्य थी।

छोटे से बालक को लाड़-प्यार करें, तो वह हमारी ओर आकर्षित होता है, लेकिन यदि हम डांट-फटकार लगाए, उपेक्षित नजरो से देखे तो, वह भी हमें अनदेखा कर देता है। एक छोटा बच्चा यदि इस सत्य को समझ सकता है। उस हिसाब से तो, मैं काफी बड़ा था। परिस्थिति से सभी लड़के बहुत गरीब थे। पढ़ाई छोड़ कर कमाई करना उनकी मजबूरी थी।

मैं अक्सर स्टेशन के बेंच पर बैठकर पढ़ाई करता था। मुझे पढ़ाई करता देख, सभी को बहुत खुशी मिलती। किसी के लिए असंभव कार्य यदि कोई आसानी से करता है, तो आश्चर्य होता ही है। उसी तरह उन लड़कों का भी था। पढ़ाई जैसा महत्वपूर्ण कार्य उनके लिए असंभव था, जो मैं कर रहा था। पढाई की उम्र में मजदूरी करने की मज़बूरी उनके हिस्से में आयी थी। गरीबी ने उनसे उनका बचपन ही छीन लिया था।

पढाई करते समय उसमें मन न लगना एक अलग बात है परंतु किसी मज़बूरी के कारण पढाई ही न करने को मिले तब मन को जो दुःख होता है, उसे बता पाना मुश्किल हैं। जब मैं वहां बैठकर पढ़ाई करता था, उनमें से कोई एक धीरे से मेरे पास आकर बैठता और मुझे किसी भी तरह की परेशानी न हो, इस बात का ध्यान रख आश्चर्य और उत्सुकता से मेरी और देखने लगता था। सभी लड़के मेरी परीक्षा, उसके परिणाम की बहुत ही उत्सुकता से पूछताछ करते थे।

वे गुंडे-बदमाश लडके मेरे दोस्त थे। मैं इन गुंडों की गैंग के लडको के सामने पढ़ाई करने बैठता। सभी लड़के मुझसे पाँच-सात या फिर दस साल बड़े और सभी अपने परिवार की जिम्मेदारी उठाने में सक्षम थे। एक विशिष्ट तय स्थान पर वे काम करते जहाँ एक स्टेशन से दूसरे स्टेशन तक उनके अलग-अलग ग्रुप थे। उनके क्षेत्र में घुसकर कोई गुंडागर्दी करें, तो उनकी ही भाषा में उन्हें समझाया जाता था।

वे किसी नए सदस्य को अपने ग्रुप में इतनी आसानी से शामिल नहीं करते थे। अपने हक के लिए लड़ना, उनके काम और जीवन का एक अभिन्न अंग बन

गया था। लेकिन मुझे कभी उनसे डर नहीं लगा बल्कि रात होने पर, अनजान लोगों के घर या भीड़ में, मैं उनके साथ रहते समय एक सुरक्षित वातावरण महसूस करता था। सभी लड़-झगड़ कर गरीब परिस्थिति पर मात करने की कोशिश करते। दो समय का खाना जुटाने के लिए, पढ़ाई छोड़ कर पैसे कमाना उनकी मजबूरी थी।

चाय !... चाय !... चाय ले लो !!.. चाय ले लो ! चाय ...!

अपनी हटके आवाज और अंदाज में, चाय बेचते समय चिल्लाता हुआ -- दीपक चायवाला मुझे देखते ही, क्षण भर के लिए रुक कर मुझसे पूछता, अरे, छोटू !.... इधर आओ !... कैसे हो छोटू ....?

ऐसा कहते हुए - कभी-कभी चाय के साथ बिस्कुट या समोसा मुझे खाने को देता।

तू पढ़, छोटू !!.. पढ़ लिखकर बड़ा आदमी बन !...

इस तरह अमिताभ बच्चन स्टाइल में मेरी पीठ थपथपाकर मुझे प्रोत्साहित करता। उनके वह शब्द आज भी मेरे कानों में गूँजते है। परिस्थिति की वजह से पढ़ाई न कर पाने का दु:ख शायद उनके मन को चुभता होगा।

अशोक पानवाला, बाबा चनेवाला, मिथुन चायवाला, रणजीत सभी को मुझ पर गर्व था। आते-जाते मेरी मुट्ठी में कुछ चने पकड़ाकर चलती ट्रेन पकड़ने की उधेड़बुन और उनकी जीने की इच्छाशक्ति को मैं उस समय करीब से महसूस कर सका।

बचपन की अल्हड़, मासूम उम्र में जिम्मेदारी की चादर ओढ़ लो, फिर भी अल्हड़ बचपन कभी न कभी झाँककर बाहर आ ही जाता है।

सुबह ट्रेन का सफर, उसके के बाद स्कूल और फिर से घर जाने के लिए ट्रेन की राह देखना दिनभर का थका हुआ, मैं कभी-कभी स्कूल बैग पर अपना सर रखकर बैठे-बैठे ही सो जाता। ऐसे ही एक बार मैं स्टेशन की बेंच पर बैठा था। उसी समय मेरी आँख लग गई। धड़-धड़ की आवाज करती हुई ट्रेन आयी और चली भी गई, परंतु मैं इतनी गहरी नींद में था कि मुझे पता ही नहीं चला और मैं सोता ही रह गया। ट्रेन जाने के बाद दीपक के ध्यान में आया।

उसने मुझे जगाया और कहा– "छोटू !! – अरे ... छोटू !!..

छोटू उठ ... तू गया नहीं !" ....,

"ट्रेन तो चली गई !".....,

मुझे समझ नहीं आया कि अब मुझे क्या करना चाहिए? मैं डर गया !.. मेरी आँखों में आँसू आने लगे।

"कहाँ रहूँगा !.. कहाँ सोऊंगा !... और क्या खाऊँगा !".... बाहर बहुत जोर की बारिश चल रही थी। मैं घबरा गया।

ये सभी प्रश्न मेरी आँखों के सामने घूमने लगे। मैं उस समय ग्यारह-बारह साल का था। किसके घर जाऊँगा !!... इस सोच से ही मैं घबरा गया। मेरी जान-पहचान का कोई भी नहीं। वापस गांव जाने की सुविधा या साधन भी नहीं। आँखों से आँसू रुक ही नहीं रहे थे। मेरी इस हालत को देखकर दीपक ने कहा - "कुछ नहीं छोटे !"...,

तू टेंशन काहे को लेता है !...? तू चल अपने घर चल !"....

"अपने घर चल !".... उसके ऐसा कहते ही - मैं उसके साथ, उसके घर बिना किसी तरह का विचार किए चला गया।

मेरे कंधे पर हाथ रख, मुझे वह अपने घर ले गया। उसका घर देखकर मैं दंग रह गया। एक छोटी-सी टिन के पत्रों की झोपड़ी। परिस्थिति से गरीब, पर मन से बहुत अमिर। उसकी अमिरी, उसके व्यवहार से झलकती। उसके शब्दों में इंसानियत और व्यवहार में अपनापन था। मेरा-तुम्हारा ऐसा कुछ भी नहीं।

अनजान लोगों की भीड़ में, उसने मुझे, अपनी झोपड़ी में आसरा दिया, ओढ़ने के लिए फटे-पुराने कपड़ों से सिली हुई गोदड़ी दी। उसका अपनेपन का एहसास, मुझे छू गया। पहनने के लिए जो कपड़े दिए उसमें, उसकी दिलदारी दिखाई दी। सही मायने में व्यक्ति की पहचान उसके चेहरे और कपड़ों से नहीं बल्कि अच्छे व्यवहार और संस्कारों से होती हैं। अपने मेहमानों को पलकों पे बिठा लेती है, गरीबी जानती है कि घर में बिछौने कम है।

उस समय फोन नहीं था। बेटा स्कूल से अभी तक घर नहीं आया, "पता नहीं किस हाल में होगा !.. कुछ खाया होगा क्या !"... इसी चिंता में माँ रात-भर सोई नहीं थी। मेरे इस अल्हड़ व्यवहार को देख, शायद उसे मुझ पर गुस्सा भी आया होगा।

मेरे चार साल के इस सफर के दौरान समय पर आँख न खुलने के कारण करीब-करीब दस से बारह बार मैं ट्रेन छोड़ चुका था। अब हक से उसके घर जाकर रहने लगा। मैं कई बार सेवक और रणजीत के घर भी रूका था। उनके

माता-पिता ने भी मुझे ऐसे ही सहारा दिया। सेवक की माँ लोगों के यहां घर के काम और उसके बाबूजी मजदूरी किया करते थे।

आचारी के यहां काम करने वाले दीपक के बाबा ने -

"किसी और के लड़के को हमारे घर क्यों लाया !"... ऐसे प्रश्नों की बौछार उस पर कभी नहीं की।

इससे उल्टा "भूख लगी होगी ना तुम्हे !"...

ऐसा पूछकर, अपने घर आया मेहमान मानकर मुझे उस दिन स्वादिष्ट अंडाकरी का भोजन खिलाया। अपनेपन की भावना से की गई मेरी पूछताछ, उनके दिल की सच्ची अमिरी थी। पढ़ने के लिए इतनी दूर से स्कूल में आता है यह पूछते समय उनके मन में आश्चर्य और अपनेपन की भावना दिखाई देती थी। मुझ जैसे अजनबी के लिए उनके व्यवहार में कभी परायापन नहीं दिखा। "**लापरवाह हूँ खुद के लिए मगर सबकी परवाह करता हूँ, मालूम है कोई मोल नहीं हैं मेरा, फिर भी कुछ अनमोल लोगों से रिश्तें रखता हूँ।**" (प्रेमचंद)

मेरा दोस्त दीपक ऐसा ही था। दीपक मुझे बहुत अच्छा लगता वो मेरा जिगरी दोस्त बन चुका था। मुझे पढ़ाई करते देख कई बार वह मुझे चाय, बिस्कुट, समोसे लाकर देता।

"तुझे भूख लगी होगी ना !"...

यह कहकर बड़े चाव से मुझे खिलाता। मुझे पढ़ाई करते देख, उस समय मेरी कोई क़िताब अपने हाथ में लेकर, उसे देखने लगता। शायद पढ़ाई करने का उसका भी मन करता हो लेकिन परिस्थिति की वजह से वह यह सब नहीं कर पाता था। मजदूरी करना, पुस्तकों के पन्ने पलटने से कहीं ज्यादा उसके लिए जरुरी था। कहते है- "कुछ रिश्ते मुनाफा नहीं देते लेकिन जिंदगी को अमिर बना देते हैं।" उस रात दीपक मुझे "कामचोर" सिनेमा दिखाने ले गया। वह सिनेमा और उसके घर बिताई रात आज भी मेरी यादों में उमड़ आते है।

ऐसे ही मैं एक-दो बार मेरे दोस्त अशोक पानवाले के घर भी रुका। उस दिन उसकी माँ ने मुझे जो गरमा-गरम खाना खिलाया, उस सब्जी और भाकर (ज्वार की रोटी) का स्वाद आज भी मेरे मुँह में घुल-घुल जाता है। आज मेरे इस सफल जीवन में, जब कभी मुझे पंच-पकवानों की दावत मिलती हैं तब भी वह रुखी-सूखी रोटी का स्वाद ही, मुझे आत्मसंतुष्टि देता हैं। मानो मेरे ये गरीब दोस्त

कह रह हो - सर्दी, गर्मी, बरसात और तूफ़ान मैं झेलता हूँ, गरीब हूँ, खुश होकर जिंदगी का हर खेल खेलता हूँ।

अशोक और दीपक के घर किए अतिथ्य भोजन के सामने आज यह पंच-पकवानों का खाना भी मुझे फीका-फीका ही लगता है। झोपड़ी में रहने वाले लोगों के मन की अमिरी, मैंने अमिर लोगों के जीवन में कभी नहीं देखी। अब मैं अचानक आने वाली किसी भी परिस्थिति का सामना करने के लिए बिल्कुल तैयार था। कहते है ना - "**दोस्ती दुःख को आधा और सुख को दुगुना कर देती हैं।**" और यही आधार मुझे उनसे मिलने लगा ।

तुमसर स्टेशन पर एक और चाय की दुकान थी। दुकान का मालिक कईबार टेप रिकॉर्डर पर गाने जोर - जोर की आवाज में बजाता था। उस दुकान में चाय बेचनेवाला राजु नाम का एक लड़का था। वह कभी किसी के झमेले में नहीं पड़ता या ऐसा कह सकते है कि उसे अकेले रहना ही अधिक पसंद था। बिल्कुल बॉलीवुड हीरो मिथुन के समान आवाज निकलना, उसके समान चलना तथा उसके हाव-भावों की नकल करने में माहिर था। ट्रेन आने में यदि देर हो तो मिथुन के डिस्को डांस के गानों को लगाकर राजू डांस करने लग जाता। उनके बीच में घुसकर सभी लड़के जितना जानते हो उतना जैसे-तैसे डांस करने लग जाते। उस समय उनका डांस देखने में बहुत मजा आता। मस्ती-मजाक में सब इतने डूब जाते थे कि कभी-कभी तो हस-हस के पेट दर्द हो जाता था। उस समय मैं राजू से बहुत प्रभावित हुआ था। मजबूरियां हावी हो जाए ये जरुरी तो नहीं, थोड़े बहुत शौक तो गरीबी भी रखती हैं।

गरीबी और संगीत का एक अपना अलग ही नाता मैंने देखा है। ऊँची आवाज में गाना सुनने से मन को बहुत सुकून मिलता है। हमारा मानसिक तनाव कम होता है। उसका बायोलॉजिकल कारण अब मुझे समझ में आया। हमारे कानों के अंदर एक सेक्युलस (से+क्यु+लस) द्रव्य पाया जाता है। उसका हमारे दिमाग तथा मन में उठते सुख-दुःख के भावों के साथ सीधा संबंध होता है। ऊँची आवाज में हम जो संगीत सुनते हैं, उस समय हमारे उत्तेजित होने पर एंडोर्फिन नामक एक द्रव्य का रिसाव होता है। उस समय ऊँची आवाज में यदि हम कोई गाना या संगीत सुनते हैं, तो वह अपने आप में एक दवाई का काम करता है। संगीत सुनने से मन में ख़ुशी के भाव उत्पन्न होते है, जो हमें ख़ुशी और सुकून देते हैं।

सभी लोग झोपड़पट्टी में रहते थे। फटे-पुराने कपड़े पहनते और टूटी-फूटी सीली हुई चप्पल उनके पैरों में होती थी। फिर भी शर्ट की कॉलर को झटका देते हुए किसी हीरो के समान बड़ी शान से आगे-आगे घूमते थे। दूसरों को देखकर अपनी परिस्थिति को दोष देते कभी नहीं दिखे। स्टेशन पर के नल का पानी चेहरे पर मारने मात्र से ही उन्हें ताजगी महसूस होती थी। परिस्थितियाँ जो भी सामने आए उसमें खुश रहना, इस तकनिक को शायद उन्होंने अपना लिया था। इसके लिए सिनेमा से उन्हें अधिक मदद मिलती थी। क्योंकि वे अपने आप को सिनेमा के हीरो के रूप में ही अधिक कल्पना करते थे। **"कभी निराशा कभी प्यास हैं, कभी भूख उपवास, कुछ सपने भी फुटपाथों पे पलते लेकर आस।"**- कितना सच कहा गया है।

परिस्थिति से गरीब लेकिन दृढ़ता से मेरे साथ खड़े मेरे माता-पिता और मुझे मिला पढ़ाई का अवसर, यही मेरे उज्ज्वल भविष्य की नींव थी। गरीब परिस्थिति ने शायद यह अवसर उनसे छीन लिया। ऐसे अनेक संकटों से गुजरते समय आए अनुभवों से पढ़ाई के प्रति मेरी आस्था बढ़ती ही गई। **"शिक्षा अर्थात पूजा और पढ़ाई अर्थात साधना।"** पढाई के प्रति लगन यही मेरी सफलता का कारण था।

स्कूल में पढाई जानेवाली हिंदी की पुस्तक में शेखचिल्ली की कथाओं का प्रभाव शायद मुझ पर अधिक पड़ा था। मैं चाय !! चाय !! चिल्लाते हुए माँ के हाथ से चाय की ट्रे लेकर, ट्रेन में चाय बेच रहा हूँ, ऐसा सपना मुझे प्लेटफार्म के बेंच पर बैठे-बैठे कई बार आने लगा। परंतु प्रत्यक्ष में मुझे बहुत बड़ा आदमी बनना था।

चाय !.. चाय ! चाय ले लो !!... चाय !!!...

दीपक और रणजीत की ऊँची आवाज मुझे झट-से जागने पर मजबूर करती थी। कई बार मुझे चाय और समोसे बेचनेवालों को देखकर उनके बोलने का ढंग और उनके धंधे की कला सीखने की उत्सुकता निर्माण हुई। सीखना मुझे अच्छा लगता था। उन लोगो की चलती ट्रेन में चढ़ने-उतरने तथा चाय बेचने का तरीका मुझे आकर्षित करता। उनकी तरफ देख - देख कर मैं भी चलती ट्रेन में चढ़ने - उतरने की तकनीक सीखने लगा। कहते है - **"सोच अच्छी हो तो सबकुछ सुंदर नजर आने लगता हैं।"** कुछ ऐसा ही मेरे साथ हो रहा था।

प्लेटफार्म पर गेट के सामने उतरने और अधिक चलना न पड़े इस कोशिश में, मैं यह तकनिक धीरे-धीरे सीख गया। धोखादायक था, परंतु उस उम्र में कुछ नया सीखने का अलग ही जोश था। उसके अच्छे-बुरे परिणामों पर विचार भला कौन करता है? यही मेरे साथ हो रहा था। चाय, समोसेवालों का आदर्श, उनका जोश चाहे जैसी भी परिस्थिति आये जीवन में बेफिक्र होकर जीना, दौड़ती बस, चलती ट्रेन पकड़ना मुझे अपने "जीवन की ट्रेनिंग" का एक हिस्सा लगने लगा। संघर्ष आपकी क्षमता को बढाता है और सफ़लता के करीब लाता हैं। मैं इसी दिशा में आगे बढ़ने लगा।

गैंग में पान, खर्रा खानेवाले और बीड़ी पीनेवाले कई लड़के थे। नशिली चीजों का सेवन करने की कोई उम्र नहीं होती। अभी-अभी जिन्हें दाढ़ी-मूंछ आई हो, पंद्रह या अठारह साल के ये लड़के बिना किसी की परवाह किए पान, खर्रा, बीड़ी आदि चींजो का नशा करते थे। शायद संगत का परिणाम हो परंतु सभी लड़के इन नशिली लत के शिकार हो चुके थे।

रेल्वे स्टेशन पर लोग कैसे होते हैं? माँ को अच्छे से ज्ञात था। मैं इनकी संगत में कहीं बिगड़ न जाऊँ, इसका डर उन्हें अधिक था। परंतु उन नशिली और बुरी लतों के विषय में मुझे कभी कोई उत्सुकता महसूस नहीं हुई। समर्थन और विरोध सिर्फ विचारों का होना चाहिए, व्यक्ति का नहीं क्योंकि अच्छा व्यक्ति भी गलत विचार रख सकता हैं।

तुम खर्रा क्यों खाते हो? एक बार मैंने दीपक से पूछ लिया।

छोटे !... तू बहुत छोटा है !!.... तुझे कुछ नहीं समझता....! हम उसके पास का खर्रा नहीं लेगा, तो वह हमारा चाय पिएगा क्या? ऐसा कहकर दीपक ने मुझे चुप करा दिया..। पर सच्चाई क्या है? हम दोनों को अच्छी तरह मालूम था।

बुरी लत की वजह से किसी से दोस्ती न करना, यह इसका समर्थन बिल्कुल नहीं हो सकता। मन पर यदि संयम रखा जाए, तो कोई भी मनुष्य इन बातों से अवश्य दूर रह सकता है और दृढ़ इच्छा शक्ति आपको उसकी ओर बढ़ने भी नहीं देती। क्योंकि नशा नहीं किसी काम का वह है दुश्मन जान का। मेरे दोस्तों ने इस तरह नशा नहीं करना चाहिए, ऐसा मुझे मन से लगता, परंतु किसी का मन परिवर्तन करने जितना ज्ञान, मैं उनको दे सकूँ, इतनी समझ तब शायद मेरे अंदर नहीं थी। समझना और समझाना सच्ची मित्रता का सबसे बड़ा गुण होता है।

एक बार मैं ट्रेन में खिड़की के पास बैठा हुआ बाहर का नजारा देख हल्की-हल्की ठंडी हवा का आनंद ले रहा था। बैठे-बैठे ट्रेन में मेरी आँख लग गई और मुंडीकोटा को पीछे छोड़ते हुये ट्रेन गोंदिया के पास जा पहुँची। मैं नींद से जागा तो आश्चर्यचकित हो गया।

मेरी ट्रेन में गोंदिया से मुंडीकोटा रोज पैसेंजर से सफर करने वाले एक शिक्षक महोदय थे। उन्होंने मुझे जानबूझकर अनदेखा कर दिया। उन्होंने यदि मुझे अपने साथ घर चलने के लिए कहा होता तो, मैं उनके साथ रातभर आराम से रुक सकता था परंतु ऐसा नहीं हुआ। हम गोंदिया में उतर गए और वे मुझे बिना पूछे ही अपने घर चले गए।

अब मेरे पास कोई दूसरा रास्ता भी नहीं था। अनजान गोंदिया के प्लेटफार्म पर मैंने अपनी पूरी रात बिताई। मुझे स्कूल के ड्रेस और बैग साथ में लिये बैठा देख स्टेशन मास्टर ने मेरी छानबीन की। मैंने उन्हें पूरी हकीकत बताई। उन्होंने मुंडीकोटा के स्टेशन पर फोन कर घर पर समाचार पहुँचा दिया।

कहने का तात्पर्य है -- इंसान शिक्षा से समृद्ध हो सकता है, परंतु किसी के प्रति इंसानियत की भावना उसमे आना, यह स्वभावगत गुण होता है जो उसके संस्कारों पर निर्भर करता हैं। जरूरी नहीं है कि कोई शिक्षा प्राप्त करके ही इंसानियत प्राप्त करें। यह उसके संस्कारों का अहम हिस्सा होता है। केवल विचारों से नहीं आचरण से जिंदगी बनती हैं, यह उतना ही सच है।

जिस प्रकार ट्रेन छूटने के बाद अशोक और दीपक ने मेरी मदद की परंतु उस शिक्षक महोदय ने नहीं। उस शिक्षा का कोई मतलब नहीं है जो आपको इंसानियत न सिखाती हो। इससे मुझे एक बात सीखने को अवश्य मिली और साथ ही आज तक मुझे उस शिक्षक महोदय का व्यवहार खटकता भी रहा।

अच्छे संस्कार, शिक्षा और संगति मिले तो जिंदगी निखर जाती वरना बिखर जाती है। प्लेटफार्म पर के मेरे सभी दोस्त गरीब परंतु मन से बहुत अमिर थे। इंसानियत को जीवन में अपनाना, मैंने उनसे ही सीखा है।

मुझे रोज घर जाने में देर हो जाती। कभी-कभी प्लेटफार्म पर बैठकर बहुत आलस आता था। पाँच बजे की जनता एक्सप्रेस ट्रेन में बैठकर मुंडीकोटा क्रॉस कर, ट्रेन तिरोडा में रुकती और तिरोडा से पौने-छह बजे की पैसेंजर यदि पकड़ी जाए तो, मैं अपने गांव मुंडीकोटा में लगभग छह बजे तक अंधेरा होने से पहले ही घर पहुँच जाता।

मेरा यह सफर सरकारी नियमों में नही बैठता था, क्योंकि मेरी पास सिर्फ तुमसर से मुंडीकोटा तक ही थी। मैं कभी-कभी बड़े ही उत्साह से दीपक, रंणजीत और अशोक के पीछे जनता एक्सप्रेस ट्रेन में चढ़ जाता। ट्रेन में टिकट निरीक्षक (टीसी) ने यदि पकड़ा भी तो मन में डर नहीं होता, क्योंकि दोस्त मेरी मदद करते थे। किसी वस्तु को बेचने वाले की तरफ टीटी ध्यान ही नहीं देते थे। दीपक, रंणजीत चाय की केटली के साथ, कप की बाल्टी पकड़ने के लिए बताते और मैं उनमें से ही एक बनकर ट्रेन में चाय, चाय !!.., चाय ले लो !!.., चाय ले लो !!...., दीपक और रणजीत के समान चिल्लाता हुआ घूमता।

ऐसा करने से मैं जल्दी घर पहुँच जाता। शाम के समय मुझे जल्दी घर जाना बहुत अच्छा लगता था। दिनभर जंगल में चक्कर लगाकर घर लौटती गायों के धूल उड़ाते खुर, गाय, भैंस या बकरियों के झुंड, उनके गले में बंधी घंटी की आवाज, सूर्यास्त का समय, आसमान में दूर तक फैले हुए लाल गुलाबी रंग, आसमान में अपने घोंसले की ओर लौटते पक्षियों के झुंड, हरे-भरे पेड़ों की बदली हुई काले रंग की छाया।

साँझ के समय खाना बनाने में लगी घर की स्त्रियाँ, उनके द्वारा जलाई चूल्हे की लकड़ियों से निकालता धुआँ और उसकी महक !!.., क्या पता? परंतु वह सब मुझे बहुत भाता। घर के बाहर फैला कोहरें के समान धुआँ, तुलसी के पास जलता दीपक और चारो दिशाओं में फैली सुगंधित अगरबत्ती की खुशबू मेरे दिनभर के थके हुए शरीर को क्षण भर के लिए शांति से भरा सुकून देकर आत्मिक समाधान दे जाती।

"सूरज भी अब छुपने लगा है, शाम का ये खूबसूरतसमां हैं, अँधेरा हो चला है पर तू न जाने कहा घूम रहा हैं।"- (अज्ञात) शाम का वह अद्‌भुत नजारा मुझसे बातें करने लगता, जो मेरे लिए किसी जादू से कम नहीं था। सूर्यास्त आकाश में रंग भर देता। इस शाम के विलक्षण, अवर्णनीय, सुंदर मनमोहक वातावरण का हिस्सा बनने की उत्सुकता से मैं आज भी शाम के समय गांव की ओर घर जाने की कोशिश करता हूँ। दीये लगाने की शाम की बेला, मेरी माँ जितनी ही मुझ पर ममता बरसाती थी। हर सूर्यास्त नई शुरुआत करने का अवसर होता है। इसलिए कई बार मैं एक्सप्रेस ट्रेन से घर आने का प्रयास करता था।

धीरे-धीरे पैसे बचे और एक्सप्रेस ट्रेन से सफर भी हो जाए, इसलिए मैंने ट्रेन की पास निकालना ही बंद कर दिया। टीटी से बचने की कोशिश करने लगा। मेरी स्कूल बिना पास और टिकट के शुरू हो गई। तुमसर के स्टेशन पर टिकट

कलेक्टर, मेरे पास टिकट या ट्रेन की पास होने - न होने पर ध्यान ही नहीं देते। बिना पास के सफर करते समय मेरे मन में जो डर लगा रहता उसके लिए अब मेरे दोस्त मुझे मदद करने लगे थे।

मैं दो-चार बार बचे हुए पैसों में से स्कूल को छुट्टी मारकर दोस्तों के साथ तीन से छह सिनेमा देखने गया था। सिनेमा हॉल में फर्स्ट क्लास की टिकट कम रहती थी और उसमें भी फर्स्ट क्लास के आखरी सीट पर बैठकर सिनेमा देखने का मजा ही कुछ और था। हम सब फर्स्ट क्लास की सीट पर बैठकर बालकनी में बैठने का आनंद लेते थे। जीवन में दोस्तों का स्थान सचमुच बहुत अहम होता है। **"दोस्ती नहीं हैं किसी दौलत की मोहताज, कृष्ण के अलावा कौन सी दौलत थी सुदामा के पास।"**

कई बार माँ-बाप अपने बच्चों के दोस्तों के बारे में बहुत सतर्क होते हैं। संगत का परिणाम होता है, यह बिल्कुल सही है, परंतु कोई मित्र बिगड़ा हुआ है, इसलिए हम भी उनकी संगत में उसके जैसे ही बन जाएँगे ऐसा नहीं होता। हमें अपने मन का संयम और विचारों का प्रभाव दूसरों पर डालना आना चाहिए। कहते हैं ना... "दोस्त सूर्य के समान अंधेरे से उजाले की ओर अर्थात सन्मार्ग की दिशा में ले जानेवाला होना चाहिए।"

आज भी भारत में ट्रेन से सफर करते समय किसी भी प्रकार की साफ सफाई या हाइजिन का विचार मन में न लाए, मैं बेझिझक, बिना किसी संकोच एक के बाद एक कई चाय के कप पी जाता हूँ चाय !!... चाय !!... चिल्ला कर चाय बेचनेवाले मेहनत से अपने परिवार का पेट पालने वाले हर एक लड़के में मुझे अपना दीपक, रणजीत या पानवाला अशोक दिखाई देता है।

काम का स्तर हमारा व्यक्तिमत्व सिद्ध करता है। किसी भी काम को छोटा या बड़ा न समझ हर काम को आदर देना चाहिए। हमें मजबूत और सकारात्मक रहना चाहिए, कभी हार नहीं माननी चाहिए।

गरीब या अमीर यह परिस्थिति पर नहीं तो मनुष्य के नजरिए पर निर्भर करता है और यह दोनों ही परिस्थितियाँ मुझे बहुत करीब से देखने को मिली। गरीब और धनवान समझे जानेवाले लोगों के दृष्टिकोण में आज भी एक अंश का भी फर्क पड़ा हो, ऐसा कहीं नजर नहीं आता। कहते है - **"फर्क सिर्फ नजरिये का होता हैं सकारात्मक या नकारात्मक वरना सीढियाँ तो वही होती हैं जो किसी के लिए ऊपर जाती हैं तो किसी के लिए नीचे आती हैं।"**

कई बार परिस्थिति से परेशान, बाहर के जीवन से लड़ते-झगड़ते लोग, अपने जीने के लिए कसरत करते समय जल्दी ही हार मान जाते है। कई बार मुँहतोड़ जवाब देकर खुद को बनाए रखने का प्रयास करते नजर आते हैं। जहाँ उन्हें कौड़ी की भी कीमत नहीं दी जाती, ऐसे संसार में उनकी उनके अस्तित्व के लिए लड़ाई शुरू हो जाती है।

उनकी ओर देखने का समाज का नजरिया, व्यवहार, उनके मन में ज्वालामुखी की तरह धधकता दिखाई पड़ता है। उनके मन में समाज के प्रति द्वेष निर्माण करता है। न घर में आदर का स्थान और न बाहर के जग में सम्मान। कही भी उनके साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया जाता। जन्म लेते ही अपने अस्तित्व को ढूँढने का उनका संघर्ष शुरू हो जाता है।

हमारे समान पाँच-दस लोग जो उनका समर्थन करते हैं, ऐसे लोगों का साथ ही उनका विश्व बन जाता है। सही मायने में उनकी विचारशक्ति को यह बल मिलने लगता है कि हमारे साथ कोई आवाज उठानेवाला है। हमारे लिए लढ़कर वह हमें न्याय दिलाएगा। यह भावना उनके समुदाय में उन्हें सुरक्षा प्रदान करती है।

इस जगत में उन्हें गुंडागर्दी के कारण आवारा, बेकार, कामचोर ऐसे कई नामों से पहचाना जाता है। ट्रेन में चाय बेचने वालोंको- ये... लड़के !!! चाय दे रे!....

ऐसी रुष्ट आवाज में उनसे बात करते है। मानो उनसे चाय लेकर उन पर उपकार कर रहे हैं। इंसानियत को भूलकर उनके साथ बहुत ही रूखा व्यवहार किया जाता हैं। ऐसा चित्र कईबार हमें समाज में देखने को मिलता है।

उनके अधिक करीब जाने पर, पता चलता है कि ये लड़के गुंडागर्दी करने के लिए नहीं, अपने अस्तित्व की लड़ाई लढ़ते या छोटी- छोटी चीजों के लिए संघर्ष करते नजर आने लगते हैं। इस समाज में उनके लिए दो शब्द प्रेम के कभी नहीं आते। **किसी की मदद के लिए धन की नहीं, बड़े मन की जरुरत होती हैं।**

दो रुपए की कटिंग चाय के लिए लोगों की कई बार उन्हें गालियाँ खानी पड़ती। चाय देने में लगने वाला समय हो या एक बूँद चाय का गिरना, उनकी गलतियों को छुपाने वाले, सज्जन समाज में कतई नजर नहीं आते। खुद को सुरक्षित समझ, गरीबों को घृणा की नजर से देख, कितना बुरा व्यवहार उनके

साथ किया जाता है? इस सुशिक्षित विद्वत समाज का कभी उनकी ओर ध्यान ही नहीं जाता।

एक शब्द भी, जिनके हिस्से में अपनेपन का कभी नहीं आता, उनसे हर कोई अपेक्षा रखता है कि, वह हमारे साथ अच्छा व्यवहार करें। यह हमारे समाज का विरोधाभास नहीं तो और क्या है? खुद पर अन्याय नहीं होना चाहिए। इसलिए अन्याय के विरोध में खुद के लिए न्याय ढूँढने वाले लड़ाई लड़ते गरीब बच्चों को, हम ही गुंडा कहकर, उन्हें यह नाम देते हैं। समाज यह भूल ही जाता है कि गरीब या गुंडा बनकर कोई जन्म नहीं लेता। कहते हैं ---"**जो दोगे वही पाओगे।**" फिर जिसके हिस्से में उपेक्षितता और हमेशा जिनका शोषण हुआ, उनसे हमारा समाज अच्छे व्यवहार की अपेक्षा भला कैसे कर सकता है? मतदान के दिन मतदान का हक बड़ी संख्या में निभाती जनता का सही अर्थ में कोई मालिक ही नहीं होता।

करीब साढे पाँच साल तक मैं उन लड़कों के साथ रहा। उन्हें बहुत करीब से देखने का अवसर मिला, उनकी गुंडागर्दी उनके हक के लिए होती हैं, यही मुझे समझ में आया। उन्हें ट्रेन में अपने निर्धारित स्टेशन के अंतर्गत चाय बेचने के लिए जो कसरत करनी पड़ती थी या मारा-मारा घूमना पड़ता, उनके हक की लड़ाई का ही एक हिस्सा था। सफलता के लिए संघर्ष करना कठिन है, पर जीने के लिए करना और भी मुश्किल होता हैं।

स्कूल में दोपहर का डिब्बा खाने के बाद भी कभी-कभी वापसी के समय बहुत भूख लग जाती थी। तर्री-चना, पोहा, समोसा, देखकर उसकी खुशबू से मन खाने को ललचाता था, परंतु पास में पैसे ही नहीं रहते, जिससे मन मारकर बैठ जाता। कभी-कभी अचानक समोसा या गरमा-गरम पकोड़े से भरी थैली चलते-चलते दीपक मेरे हाथ में थमा देता। दीपक चायवाला या कभी अशोक पानवाला में इनकी सच्चाई, अच्छाई और अपनापन मुझे दिखा।

मैं उनको जान सका क्योंकि मैं भी उन के समान एक गरीब परिवार से था। फर्क सिर्फ इतना ही था, मेरे जीने का संघर्ष पढ़-लिखकर कम करने का प्रयास कर रहा था और उन्हे पेट भरने के लिए यह मार्ग बचपन से ही चुनना पड़ा। इसलिए शायद, उन्हें पढाई का अवसर ही नहीं मिल पाया। माँ - बाबूजी की वजह से मुझे अपनी पढ़ाई पूरी करना संभव हो पाया।

हर कोस पर भाषा बदलती है, उसी प्रकार खाने-पीने, रहन-सहन, बोलचाल, पहरावे की पद्धतियाँ भी बदलती है, यह प्रकृति का नियम है। इसमें

शहर और गांव में बहुत बड़ी खाई हमें देखने को मिलती है। चौथी से पाँचवी में पढ़ने के लिए बहुत ही छोटे गांव से तुमसर में आने के बाद मुझे इसका अनुभव आया। पढ़ाई के बल पर अपनी बुद्धिमत्ता साबित करने के अलावा मेरे पास कोई दूसरा रास्ता भी नहीं था।

पाँचवी कक्षा में मेरा तिसरा नंबर आया और छठी कक्षा में मैं कैप्टन बना। साधारण होशियार मतलब कक्षा में पहले पाँच क्रमांक में आने वाले अथवा हाथ ऊपर कर पूछे गए प्रश्नों का उत्तर देनेवाले तथा जो बच्चे बहुत ही मूर्ख होते हैं, अक्सर स्कूल में अपने शिक्षकों के अधिक ध्यान में रहते हैं।

इसलिए मुझे निखाडे सर के मन में घर करने का अवसर मिल गया। निखाडे सर मेरे क्लासटीचर थे। अपनी बुधिमत्ता के कारण मैं उनका प्रिय विद्यार्थी बना था। स्कॉलरशिप की क्लास हमारे गणित के धांडे सर लेते। सभी ने उनके पास क्लास लगाया लेकिन उनकी फीस देना मेरे लिये संभव नही था, इसलिए मैंने निखाडे सर को अपनी समस्या बताई।

"अरे !.... कोई बात नहीं !..., मेरे घर आया करो। मैं तुम्हें पढ़ा दूँगा...।"

निखाड़े सर ने यह कहकर मुझे बड़ा सहारा दिया। मैं स्टेशन से साढ़े आठ बजे सीधे उनके घर जाने लगा। स्कॉलरशिप की क्लास होने के बाद ही मैं स्कूल जाता। मुझसे ट्यूशन के पैसे उन्होंने कभी नहीं लिए। आज सिर्फ पैसों के लिए सिखाने वाले इस समाज में गुरु का चित्र ही बदल गया हैं, उस समय किसी भी तरह की गुरु दक्षिणा के बिना सिखाने वाले निखाड़े सर आज भी मेरे स्मरण में मूर्धन्य स्थान पर है। गुरु सिर्फ राह दिखाते हैं मगर चलना हमें ही पड़ता हैं।

उनके घर निखाड़े मैडम ने भी मुझे बहुत अपनापन दिया, क्लास पूरी होने के बाद खाना खाने की ज़िद करना, तो कभी मेरे संकट के समय सहारा देती। मुझे रहने के लिए एक हक का घर निखाड़े मैडम की वजह से ही मिला। जरुरत पड़ने पर मैं वहीं रहने लगा, जिससे उनका बेटा उमेश मेरा बहुत अच्छा दोस्त बन गया था। इसतरह मैं, सर का बेटा उमेश, सुशील, प्रवीण हम दोस्तों का भी स्कूल में एक ग्रुप तैयार हो गया।

अमेरिका में आने के बाद भी, जब कभी मेरा तुमसर में जाना होता हैं, मैं याद से निखाड़े सर से मिलने जाता हूँ। मेरा विद्यार्थी बहुत बड़ा हो गया है। अमेरिका में इतने बड़े पद पर कार्य कर रहा हैं। इस बात का गर्व उनके चेहरे पर प्रकट होता हैं। उनका अपनापन आज भी वैसा ही है।

परीक्षा के पेपर सुबह साढ़े-सात या आठ बजे होते थे। मुंडीकोटा से निकलने वाली आठ बजे की ट्रेन से यदि मैं निकलता, तो भी पौने-नौ या नौ बजे के पहले पहुँचना संभव नही था।

जब कभी मुझे तुमसर में ही रात बितानी पड़ती। ऐसे समय मुझे तीन घरों की बहुत सहायता मिली। एक तो निखाड़े सर, दूसरे मेरे बाबूजी के ममेरे भाई, जिनका घर भी तुमसर में ही था और मेरे साथ पढ़ने वाला मेरा दोस्त दीपक गड़पायले, जिसका घर देवाड़ी रेलवे स्टेशन परही था। उसके घर पर, मैं अक्सर रहने लगा। परीक्षाओं के समय उसने भी मुझे बहुत मदद दी।

उन्हें मेरे खाने-पीने की तकलीफ न उठानी पड़े, इसलिए मैं शाम के समय की ट्रेन से मेरे खाने का डिब्बा लेकर तुमसर से देवाड़ी आता और रात में उनके यहां आराम करता। परीक्षा देकर दोपहर एक बजे की ट्रेन से मुंडीकोटा के लिए निकलता, फिर से शाम के समय की ट्रेन से घर से खाने का डिब्बा लेकर तुमसर के लिए निकलता और दूसरे दिन फिर परीक्षा के लिए तैयार रहता। परीक्षा के समय यही मेरा दिनक्रम चलने लगा। संबंधो की मजबूती के लिए झुकना पड़ता है, सहना पड़ता हैं, यह बातें अब मैं समझने लगा था।

मुझे नई-नई चीजें सीखने में बहुत आनंद मिलता है। मेरा मन गति से भी अधिक जल्दी यह सब सीख लेता। मुझे बाएँ हाथ से लिखने के कारण लोग left-handed कहते और कुछ अलग होने का एहसास दिलाते। मेरे क्लास की एक लड़की मेरे समान ही बाएँ हाथ से लिखती। निखाडे सर के यहां स्कॉलरशिप की क्लास करने के लिए आती थी। साथ में पढ़ने वाले सभी बच्चे हमें चिढ़ाते। कभी-कभी बहुत गुस्सा आता तो कभी अच्छा भी लगता था। उस समय सातवीं कक्षा में स्कॉलरशिप की परीक्षा, पूरी स्कूल में केवल हम दोनों ने ही अच्छे अंको से पास की थी। जिससे दोस्तों को हमें चिढ़ाने के लिए एक और विषय मिल गया।

जब मैं गांव में स्थित बीड़ी कंपनी में चाय देने जाता था तब मैंने वहां चायवालों को देखकर उनसे एक तरकीब सीख ली। जीतू और मैं हम दोनों एक ही हाथ में छह से सात कप पकड़कर दूसरे हाथ में चाय की केतली, एक-एक कप सीधा कर सीधे ग्राहक के कप में चाय डालते। कुछ ही दिनों में अनुभवी चायवालों के समान हम यह काम करने लगे यह भी एक कला है। केटली से कप में चाय डालते समय होने वाली सुर-सुर की आवाज एक पल में कई लोगों का ध्यान हम पर खींच लेती। इस कला की वजह से चायवाला कहकर हमें एक नई

पहचान मिल गई थी। कला का जीवन में बहुत महत्व होता हैं। कला के लिए बुद्धि की आवश्यकता होती हैं पैसों की नहीं। इससे जो ख़ुशी मिलती है उसे शब्दों में बयां करना बहुत कठिन है।

बीड़ी कंपनी से हम पृष्ठ कवर लाते और अपनी किताबों को लगाते। मुंडीकोटा स्कूल में चाय देने जाते तब कक्षा में पड़े चॉक के टुकड़े उठाने का शौक भी रखता था।

मुझे लगता है किसी भी बात के लिए संयम रखना उस पीढ़ी की असली पहचान थी। उस समय आज के समान हर घर में टी.वी. नहीं था। हमारे गांव में भी एक ही टी.वी. था, इसलिए गांव के सभी लोग वही पर टीवी देखने जाते। बुधवार के दिन लगनेवाला साढ़े-आठ बजे का चित्रहार मेरे लिए स्पेशल होता। चित्रहार समय पर देखने सकूँ इसलिए एक्सप्रेस ट्रेन से आने की अक्सर, मैं कोशिश करता और साढ़े-छह बजे तक गांव में पहुँच जाता।

मैं फर्स्ट डे फर्स्ट शो पिक्चर देखने का शौकीन हूँ। अपनी पसंद की चीजों को बचपन से ही सँभाल कर रखना और अपनी पसंदीदा चीजों को करने से मुझे एक आत्मशांति, सुकून और आत्मबल मिलता, साथ ही जीने की एक नई दिशा मिलती है। सुकून और शौक इंसान को एक नई दिशा तथा कुछ नया देखने का दृष्टिकोण देते है। मैंने अपनी पसंद-नापसंद की ओर ध्यान न देकर खुद को उस साँचे में ढालने का प्रयास किया।

अच्छा-बुरा क्या है? शायद बता नहीं पाउँगा। चक्की चलाने लगा और तब से सिनेमा देखने का शौकीन बन गया। टॉकीज में सिनेमा देखना बहुत पसंद था। कोई भी कला या शौक, जीवन को नया दृष्टिकोण देने वाला होना चाहिए।

आज ईमानदारी से बताता हूँ। मैंने कई बार स्कूल की छुट्टी मार कर शुक्रवार के दिन फर्स्ट डे फर्स्ट शो देखने का प्रयास किया। पिक्चर देखने के बहाने स्टेशन पर रहने वाले दोस्तों से मिलने की मेरी कोशिश रहती थी । उस समय उस तरह का व्यवहार करना कितना सही और कितना गलत था यह पता नहीं परंतु मैंने अपने जीवन में जो गलतियाँ की उसका समर्थन न करते हुए, उसमें से मैंने क्या अच्छा पाया, उसकी ओर मैं अपना ध्यान आज केंद्रित करता हूँ। इसलिए अपराधी होने की भावना मेरे मन को दु:ख नहीं पहुँचाती।

उस दिन को याद करते हुए आज भी कई बार अमेरिका में ही शुक्रवार का "फर्स्ट-डे, फर्स्ट-शो" थिएटर में जाकर बड़े ही चाव से देखने की मेरी कोशिश रहती है। शायद मेरा जीवन की ओर देखने का दृष्टिकोण अलग हैं।

माँ मेरी पसंद की सब्जी क्यों नहीं बनाती है? बचपन में ऐसे कई प्रश्न मेरे मन में आते। धीरे-धीरे मैं अपनी पसंद - नापसंद पर विचार करने लगा। खाना मुँह के स्वाद के लिए नहीं, पेट की भूख शांत करने के लिए खाना चाहिए। पसंद न हो और यदि ऐसी सब्जी बनी है, तो खाना न खाकर दिनभर हमें भूखा रहना चाहिए। भूक लगने पर वही सब्जी खाने का प्रयास करना चाहिए, फिर देखना सचमुच नापसंद पसंद में बदल जाएगी। सच बताया जाए तो पेट की भूख की कोई पसंद-नापसंद नहीं होती। यह सब जीभ के चोंचले होते हैं।

कोई चीज हमें पसंद नहीं है, इसलिए उस पर ठप्पा लगाने से अच्छा है कि पेट में भूख से चिल्लाने वाले कौओं के चिल्लाने पर ही खाना चाहिए। तब आपका ध्यान थाली में परोसे हुए खाने की ओर न जाकर, भूख की ओर जाएगा। आपका नज़रिया बदला हुआ नजर आएगा। यह मैं निश्चित रूप से बता सकता हूँ। अमेरिका की इस लाइफ-स्टाइल में मुझे कई बार गांव में त्योहारों के अवसर पर, बहुत सारा प्याज डालकर बनाई जानेवाली खसखस की सब्जी की याद आती है।

बिल्कुल वैसा ही अनुभव मुझे इंसानों के बारे में भी आता है। कोई व्यक्ति एक क्षण में हमारे मन को भा जाता है, तो कभी किसी व्यक्ति का सहवास हमें अच्छा नहीं लगता। परंतु उसकी किसी समय हमें दी हुई सलाह, मार्गदर्शन के कारण हमारे मन में उसकी छवि बदलने लगती है। व्यक्ति वही होता है, परंतु उसकी ओर देखने का नजरियाँ यदि बदल जाए तो हमारी पसंद-नापसंद ही बदल जाती है। कहते है - जब आप किसी को पसंद करने लगते है तो उसकी बुराइयाँ भूल जाते हैं और किसी को नापसंद करते है तो उसकी अच्छाइयां भूल जाते हैं।

आटाचक्की और हमारी सहनशक्ति

तुमसर में ऋषि मामा का एक प्लॉट था। माँ ने ऋषि मामा को थोड़े पैसे देकर वह प्लॉट खरीद लिया और बचे हुए पैसे धीरे-धीरे मामा को वापस किए। ऋषि मामा की यह थोड़ी-सी मदद उस समय हमारे लिए तुमसर में अपने आप को बसाने में बहुत मददगार साबित हुई। माँ-बाबूजी ने अपनी जमापूँजी और नानाजी की मदद से उस प्लॉट पर एक छोटा-सा घर बाँध लिया। मैं नौवी कक्षा में था जिससे मेरी पढ़ाई का स्वरूप बहुत बढ़ गया था। लेकिन मुंडीकोटा से तुमसर के सफ़र में ही मेरा बहुत समय बर्बाद हो जाता था। इसलिए माँ ने दादी और बालू (मेरे तीसरे नंबर का भाई) को मेरे साथ तुमसर में रखने का निर्णय लिया। परंतु दो घरों का खर्चा उठाना अधिक मुश्किल हो गया था। इसलिए माँ-बाबूजी कोई नया व्यवसाय करने का विचार करने लगे।

हमारे नानाजी बहुत मेहनती थे। जिन्होंने अपनी मेहनत के बल पर चक्की लेकर अपने व्यवसाय पर अच्छी-खासी पकड़ जमाई थी। माँ-बाबूजी ने नानाजी की मदद से एक पुरानी चक्की खरीद ली। पुरानी होने के कारण वह बीच-बीच में ही आटा बनाते समय, मोटर यदि गरम हो जाए तो चक्की बंद पड़ जाती। दस से पंद्रह मिनट निरंतर चलने के कारण उसे याद से बंद करने की सतर्कता हमें बरतनी पड़ती थी।

चक्की शुरु करते समय वह हमें बहुत तकलीफ देती। ईश्वर का नाम लेकर शुभारंभ करते और जैसे-तैसे हमारी खुशनसीबी से चुक्की शुरु करते ही वों शुरु भी हो जाती। बीच में ही उसे बंद करना बहुत जान पर आता लेकिन कोई रास्ता भी नहीं था। बेचने वाले ने शायद उससे बहुत परेशान होकर वह चक्की बेची और हमने उसी तकलीफ के साथ उसे खरीद लिया था।

चक्की का एक साल जैसे-तैसे बीत गया। दादी की तबीयत साथ नहीं दे रही थी। इसलिए दादी और बालू को मुंडीकोटा फिर से वापस भेज दिया गया।

जीतू (मेरा दूसरे नंबर का भाई) अपनी नौंवी कक्षा की पढ़ाई के लिए मेरे साथ तुमसर में रहने लगा।

चक्की गेहूँ पीसते-पीसते बीच में ही बंद पड़ जाती और कभी-कभी शुरू ही नहीं होती, बहुत तकलीफ देती थी। आज के समान फोन की सुविधा भी नहीं थी। दो किलोमीटर दूर रहनेवाले इलेक्ट्रीशियन के घर जाकर उसे साइकिल पर बिठाकर लाना पड़ता। चक्की ठीक होने के बाद गेहूँ चक्की में डालकर आटा बनाया जाता। ऐसे समय ग्राहकों को रोककर रखना, उनके प्रश्नों का जवाब देना हमारे लिए बहुत कठिन हो जाता। चक्की बंद पडने के बाद परिस्थिति को संभालना हमारी सहनशक्ति की असली परीक्षा होती। ग्राहक वापस चला न जाए इसलिए उनके साथ बहुत अच्छे से प्रेम भरा व्यवहार करना पड़ता था। मन में बहुत गुस्सा आने पर भी उनके प्रश्नों के उत्तर देते समय बहुत परेशानी होती, परंतु उस परिस्थिति को उनसे मीठा बोलकर सँभाल लेना पड़ता था। कहते है - चिंता उतनी ही करनी चाहिए जिससे काम बन जाए और हमने भी इसे अपने जीवन में अपनाना शुरु कर दिया।

चक्की की गर्म मशीन पर कभी-कभी गेहूँ का आटा जल्दी बन जाता। कई बार मशीन गर्म न हो इसलिए मशीन पर गीला कपड़ा या बोरी को बिछाया जाता। गिला कपडा इलेक्ट्रिक मशीन पर रखना कितना धोखादायक है, यह हमें बाद में पता चला। लेकिन ईश्वर की कृपा से किसी भी तरह की कोई दुर्घटना घटित नहीं हुई।

चक्की बुधवार के दिन बंद रहती थी, परंतु हमें कोई राहत नहीं मिलती, क्योंकि उस दिन चक्की के अंदर का भाग साफ कर उसके पाटो की देखभाल करनी पड़ती। यह काम बहुत कठिन था, जिसमें बहुत समय बर्बाद होता था। पाटो की मरम्मत यदि ठीक से नहीं हुई, तो आटा ठीक से नहीं बनता था। इसलिए चक्की को फिर से खोल कर नए-नए तरीके से ठीक कर जोड़ना पड़ता। चक्की के पाटो पर हथौड़ी से बारीक गड्ढे करने में (चक्की टाकना) बड़ी कसरत होती थी। चक्की टाकना भी एक कला है। बहुत ही नजाकत से धीरे-धीरे सावधानीपूर्वक यह काम करना पड़ता। चक्की को ठीक करने वाले कारीगर बुधवार के दिन बहुत व्यस्त रहते। उनके आने-जाने के समय का ध्यान रखते-रखते नाक में दम आ जाता था।

चक्की टाकने का कार्य देख-देखकर, जीतू चक्की के काम में निपुण हो गया। चक्की साफ होने के बाद उसका हर हिस्सा बहुत ध्यान से लगाना पड़ता।

पहली या दूसरी पिसाई के समय हमेशा ही उसका पत्थर गिरकर, आटे में घुलमिल जाने से आटा खराब हो जाता। इसलिए हमें बुधवार के दिन ही धान पीसकर रखना पड़ता, ताकि बाकी लोगों को असुविधा का सामना न करना पड़े।

बुधवार के दिन चक्की बंद होने पर भी हमारा दिन चक्की के काम में ही व्यस्त रहता। तकनीकी या मशीनी युग में हमने बहुत बड़े-बड़े शोधकार्य क्यों न किए हो, फिर भी कुछ चीजों के लिए हमें हाथ से मेहनत और सहनशक्ति से काम लेना पड़ता है। ठोकरें खाकर हमें खुद ही सँभलना पड़ता है। इसलिए हमारे अंदर सहनशक्ति होना बहुत जरुरी है।

चक्की के आने से सभी प्रकार के प्रश्न हल हो गए, ऐसा बिल्कुल भी नहीं था। पैसों की आवक-जावक बहुत अधिक नहीं बढ़ी। हमें पैसे बहुत सँभल कर खर्च करने पड़ते थे। रोज ही बाजार जाकर खाने का सामान लाना पड़ता। एक रुपए की खसखस और दो प्याज डालकर तर्री की सब्जी बनाई जाती। त्योहारों के दिन तो कभी-कभी रात के खाने में वही हमारी पसंदीदा सब्जी बनती थी जिसे हम दोनों ही हँसी-खुशी बहुत ही चाव से खाते। छोटी-छोटी और आवश्यक चीजों पर संतुष्टि रखना, हम बहुत अच्छी तरह से सीख गए थे।

चक्की पर काम करने के हमारे दिन निश्चित हो गए। तीन दिन एक भाई को चक्की चलाना पड़ता तो दूसरे को घर आकर खाना बनाना, कपड़े धोना, बर्तन मांजना और कुएँ से पानी लाने का काम करना पड़ता। इसतरह नियोजन करने से दोनों पर काम का बोझ नहीं पड़ता और काम ठीक से हो जाता था।

बीच-बीच में बाबूजी तुमसर में शनिवार या रविवार के दिन आते, तब हमें बहुत आनंद मिलता। बाबूजी आते थे, तो चक्की का काम सँभाल लेते। उस समय हमें क्रिकेट खेलने के लिए काम से मुक्ति मिल जाती, जिससे हमारी खुशी का ठिकाना ही नहीं रहता। छोटी-छोटी बातों में आसमान जितना आनंद कैसे ढूंढना है, यह हम सीखते चले गए।

घर के पास स्थित बांगलकर प्राथमिक स्कूल के आँगन में खेला वह क्रिकेट का खेल, वह-दिन, वह-दोस्त और जिम्मेदारियाँ निभाते-निभाते खुद से किया हुआ संघर्ष। खुद को पहचानने की कोशिश कि हम भी कुछ कम नहीं, इस विचार में मारे हुए छक्के और चौके आज भी मैं भुला नहीं हूँ। लेफ्ट हैंडेड बैट्समैन होने के कारण मुझे क्रिकेट खेलने में थोड़ा बहुत फ़ायदा मिल जाता। जिससे मैं उस अवसर का सोना करने से नहीं चुकता था।

वैसे हम तबीयत से अच्छे-खासे साधारण तंदुरुस्त थे। बहुत अधिक दुबले-पतले या हटे-कट्टे भी नहीं। गांव के लोगों को, छोटे-छोटे बच्चों को चक्की चलाते देख बहुत आश्चर्य होता। हम पढ़ाई में भी अच्छे थे और मेहनत करके पढ़ाई करते इसलिए हमारी तरफ देखने का नज़रिया अच्छा और तारीफों से भरा होता। वे अक्सर कहते नज़र आते -

"लाखनकर के बच्चों को देखो, कैसे मेहनत करके सीखते हैं ...!!

हर घर में हमारी उम्र के बच्चों को हमारे उदाहरण दिये जाते। हमें दूसरों का अनुकरण करने की अपेक्षा किसी और का प्रेरणास्थान बनना चाहिए। माँ ने बचपन में सर पर हाथ फेर कर यह बताया था। हम उसका आज भी अनुकरण कर अपने जीवन में अपनाते हैं।

कुछ लोग हमारी तारीफ करते, तो कुछ मस्तीखोर लड़के कभी-कभी हमें तकलीफ भी पहुँचाते। चक्कीवाला..!! चक्कीवाला....!! ...कहकर हमें चिढ़ाते। हमारी मेहनत और पढ़ाई से उन्हें ईर्ष्या होती। हम बुरा नहीं मानते थे परंतु कभी-कभी यह सब देखकर रोष बहुत बढ़ जाता था।

माँ-बाबूजी गांव में और हम दोनों भाई तुमसर में अकेले रहते, इसलिए बिना किसी कारण, किसी से पंगा लेने में डरते थे। एक दिन हमारे पड़ोस के घर में लेदे नामक परिवार रहने के लिए आया। उनका कृष्णा नाम का दुबला-पतला सा लड़का, जीतू की कक्षा में ही पढ़ता था। वह जल्दी ही हमारे बीच में घुल-मिल गया और हमारी उसके साथ अच्छी दोस्ती हो गई। अन्याय करने वाले की अपेक्षा अन्याय सहन करने वाला अधिक दोषी होता है, उसी प्रकार हम दोनो ने भी उन्हें जवाब देना सीख लिया। जीतू ने तो उनसे हाथापाई करने के लिए कराटे की ट्रेनिंग ही लेना शुरू कर दिया, लेकिन झगड़ा करने की नौबत कभी नहीं आयी। एक बार जीतू और कृष्णा ने मिलकर एक डाबला नाम के लड़के की अच्छी-खासी पिटाई कर दी। वह किस्सा याद आते ही हम आज भी बहुत हँस-हँस के लोटपोट हो जाते हैं।

हमने भी तुमसर में हमारे दोस्तों का एक अच्छा खासा ग्रुप बना लिया था। जिसमें हम अपनी चलाने लगे और उनको करारा जवाब भी देने लगे। उस दिन से बस्ती के लड़के हमारे साथ पंगा लेने से घबराने लगे और हम पर हावी न होकर डरने भी लगे थे। अब हमारा वर्चस्व बढ़ने लगा था। उनके नज़रिए में परिवर्तन आने से सभी पहले की तरह हमें चक्कीवाला न कहकर आदर से देखने लगे।

हम अकेले रहे तो भी समाज हम पर दबाव बनाने का प्रयास करता है- सच ही है। छोटी-बड़ी गैंग सभी तरफ होती है। नए, अकेले या कमजोर लोगों को दबाने का प्रयास हमेशा से ही किया जाता रहा है। बिना वजह चिढ़ाना, मजाक करना ऐसे कई प्रकार हमेशा से होते आ रहे हैं और आज भी देखने को मिलते हैं।

शायद सभी के घरों में यही वातावरण रहता है। हम जैसे कमजोर नए और सीधे-साधे लोगों को सँभाल लेने के संस्कार उनके घर पर नहीं दिए जाते। घर के छोटे सदस्यों ने यदि अपनी राय दी या कुछ बताने की कोशिश की तो उन्हें -

"तुम्हें कुछ नहीं समझता !!...."

यह कह कर उसे चुप करा दिया जाता हैं। उसे क्या लगेगा इसका विचार तक नहीं किया जाता। अपने से छोटे या अकेले, असहाय व्यक्ति पर दबाव लाने के संस्कार उन्हें घर से ही मिलते हैं। शायद यहीं से उसे दूसरों पर वर्चस्व दिखाना और घर का गुस्सा बाहर निकालने की आदत लग जाती है।

लेकिन इसमें हमारा घर अपवाद है। इस तरह से यदि विचार किया जाए तो हम अपने आपको बहुत भाग्यशाली मानते हैं। हमारे माँ-बाबूजी ने.. तुम्हें कुछ नहीं समझता...!!! ऐसा कभी नहीं कहा। हमारे विचारों का आदर किया और सभी का सम्मान करने की सीख दी। हमें यह संस्कार हमारे घर से ही मिले। अपने से कमजोर लोगों को कमजोर कहकर छोड़ देने से अच्छा उन्हें अपने साथ लेकर चलना हैं। उनकी भावनाएँ समझ कर उनके गुणों पर योग्य दृष्टि से विचार करना, हम बचपन से ही सीखते आए। अच्छे संस्कार किसी बाजार में नहीं मिलते बल्कि ये तो परिवार की देन होते हैं।

माँ-बाबुजी तुमसर में शिफ्ट होने तक हम दोनों भाई ही तुमसर में रहने लगे। पैसे का लेन-देन, हमारा खर्चा सब अपना संभालने लगे। छोटी-मोटी नोक-झोंक होती, परंतु हमारे बीच मतभेद कभी नहीं हुए।

तीन वर्ष तक तुमसर में स्कूल, कॉलेज से पढ़ाई करते समय चक्की संभालना, जीवन की समस्याओं का सामना करना हम सीख गए थे। माँ-बाबूजी ने यहां-वहां से कर्जा लिया तथा रिश्तेदारों से मदद लेकर धीरे-धीरे पैसे जमा किए और दुकान के पीछे तीन कमरे बना लिये।

तुमसर में हम दोनों भाई ही रहने के कारण, हमें इतने बड़े घर की जरूरत नहीं पड़ती थी। सामने चक्की और बीच में एक रुम अपने लिए रखकर, बाकी बची दो रूम हमने एक परिवार को किराए पर दे दी। चक्की से मिलने वाली

आमदनी और दो रुम का किराया इस पर हमारी पढ़ाई का खर्चा चलता। परिस्थितियों से लड़ते-झगड़ते जीवन का सफर तय करना यह हमारे जीवन का एक महत्वपूर्ण और अभिन्न अंग बन गया। **"सबसे बड़ा गुरु ठोकर ही है जब खाते है तभी सीखते हैं।"**

एक रुम में ही खाना बनाना, वहीं पर दसवी-बारहवीं परीक्षा की पढ़ाई करना। कभी-कभी चक्की के कामों से हमारी पढ़ाई में बहुत बाधाएं आती, परंतु कोई उपाय भी नहीं था। चक्की चलाना, पढ़ाई जितना ही महत्वपूर्ण काम था।

ट्यूशन उस समय एक नए फैशन की तरह चल रहा था, परंतु वह हमारे लिए संभव नहीं था। क्योंकि बात फीस की आती, इसलिए अपने आपको ही समझा-बुझा कर पढ़ाई करनी पड़ती। जीवन के हर कदम पर हमारी सोच तथा कर्म ही हमारा भाग्य लिखते है। इसलिए हमें स्वयं ही मन लगाकर अपनी पढ़ाई करनी पड़ी।

यदि ठीक से पढ़ाई न हुई हो तो बारहवीं कक्षा में ड्रॉप लेने की नई-नई पद्धति आयी थी। उस समय कई लोग इस पर अमल कर रहे थे। क्या मुझे भी ड्राप लेना चाहिए? मेरे मन में भी कई ऐसे विचार आने लगे, असमंजस की परिस्थिति निर्माण हो गई। आधी-अधूरी जानकारी, बेचैन मन, ड्रॉप लेने के विचार में ही डूबकर मैंने जैसे-तैसे वह परीक्षा दी। पेपर आधा-अधूरा छोड़ कर मैं घर वापस आ जाता। मैं पास हो जाऊँगा, इसकी तो उम्मीद ही छोड़ दी थी। कुछ दिनों पश्चात मेरा रिजल्ट आ गया।

पॉलिटेक्निक: साकोली-नागपुर

मैं बारहवीं कक्षा में 50% अंको से जैसे-तैसे पास हुआ। पी.सी.एम. ग्रुप इंजीनियरिंग प्रवेश के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण था। उसी पी.सी.एम. (Physics, Chemistry, Maths) ग्रुप में मुझे 40% अंक मिले। इतने कम प्रतिशत पर बी.ई. में नंबर लगना बिल्कुल असंभव था। कुछ गलतियों की माफी या प्रायश्चित नहीं होता।

गांव में स्थित बीड़ी कंपनी के मैंनेजर को लेकर बाबूजी गोंदिया के कॉलेज में गए। क्योंकि वह इंजीनियरिंग कॉलेज कंपनी के मालिक का ही था। बेटे की एडमिशन की उम्मीद से गए, परंतु एडमिशन के लिए पी.सी.एम. ग्रुप में कम से कम 45 प्रतिशत अंक चाहिए थे। इसलिए गोंदिया जाने का कोई फायदा नहीं हुआ। बेटा होशियार है, उसका कुछ नुकसान न हो जाए, उनके चहरे के भाव मन की समस्त परिस्थितियों को बयाँ कर रहे थे। उन भावों को पढ़ सकूँ इतना बड़ा तो मैं निश्चित ही था। रात को हम सभी एक जगह बैठे। मेरे हाथ से बहोत कुछ छूट गया हो, ऐसा मुझे लग रहा था। **योग्य निर्णय जीवन को सवांरता है, वही एक अयोग्य निर्णय हमारे सपनों को बिखेर देता है।** जिंदगी एक मिनट में नहीं बदलती, पर एक मिनट में लिया गया फैसला जिंदगी बदल देता हैं। एक गलती जीवन ही बदल डालती है, उस समय महसूस हो रहा था।

ड्रॉप लेकर मैंने अगले वर्ष बारहवीं कक्षा की परीक्षा दी होती तो आज परिस्थिति इससे अलग होती। ठीक है!! हो गया सो हो गया! **"अब पछताए होत क्या जब चिड़ियाँ चुग गई खेत।"** (कबीरदास) हाथ से निकल चुकी बातों पर पश्चाताप करने से अच्छा, अब आगे क्या करना है? मैं इस पर विचार करने लगा।

सब ठीक हो जाएगा, माँ बाबूजी का यह विश्वास मुझे बल देने लगा। सफलता-असफलता में हमारे साथ डटकर खड़े रहने वाले माँ-बाबूजी हमें मिले

थे। कम अंक मिलने का दोष उन्होंने मेरे सिर पर कभी नहीं डाला, उस परिस्थिति से कैसे मार्ग निकाला जाए?, यह सलाह उन्होंने मुझे दी। बहुत कम पढ़े-लिखे होने के बावजूद अनुभव की स्कूल में वे सौ-प्रतिशत से पास हुए थे। असफलता आपको गलती सुधारने का अच्छा अवसर देती हैं।

मैंने दसवीं कक्षा के अंकों पर पॉलिटेक्निक के (साल, 1990) लिए फॉर्म भरा। एडमिशन के कॉलेजेस की लिस्ट लग गई। पाँच जगहों के लिए मेरा वेटिंग लिस्ट पर अठारहवां नंबर था। बहुत कड़ी टक्कर चल रही थी। एडमिशन के लिए खिंचातानी उस समय भी चलती थी। एडमिशन मिलेगी या नहीं?, मैं बेचैन था, बहुत डर लग रहा था।

उस समय माँ-बाबूजी मुंडीकोटा में ही रहते थे। साकोली जाने से पहले, हमारे घर के दो कमरों में किराये से रहनेवाली चाची का आशीर्वाद लेने मैं उनके यहां गया। चाची ने मेरे सिर पर हाथ फेर कर मुझे आशीर्वाद देते हुए कहा -

"तारेंद्र बेटा !!.. तुम्हें एडमिशन अवश्य मिल जाएगी !"..

चाची के वह शब्द आज भी मुझे याद है। बड़ों के आशीर्वाद में बहुत ताकत होती है। एक-एक कर चार एडमिशन हो चुकी। सिर्फ एक जगह ही बची थी। मेरा आठवीं से दसवीं टेक्निकल होने के कारण इसका मुझे फायदा मिला और मुझे वहां एडमिशन मिल गयी।

बीमारी में डॉक्टर के पास जाने पर अपनी आधी बीमारी उसी समय ठीक हो जाती है। उसी प्रकार बड़े लोगों के आशीर्वाद में यही जादू होता है, उनके आशीर्वाद हमें सकारात्मक ऊर्जा देते हैं। आशीर्वाद के सामने हर मुसीबत घुटने टेक देती है।

इतने छोटे अंतर से हाथ आई चीज कहीं निकल कर चली तो नहीं जाएगी? हाथ से निकल कर जाते-जाते जब हमें कोई चीज मिल जाती है और हम अपने नसीब पर सब छोड़-छाड़ कर निश्चिंत हो जाते हैं, तब आशीर्वाद हमारे काम आते है। ऐसे समय बड़े लोगों के आशीर्वाद से हमें उस काम का यथायोग्य फल अवश्य मिलता है। इस पर मेरा विश्वास अधिक बढ़ गया। कोशिश करने पर सफ़लता प्राप्त होती हैं और उसमें आशीर्वाद का साथ मिल जाये, तो शुद्ध सकारात्मक विचारों का कवच, अपने भीतर-बाहर अपने आप तैयार होने लगता है।

घर आने पर चाचीजी ने एडमिशन के विषय में पूछताछ की। पॉलिटेक्निक कॉलेज में एडमिशन होने के बारे में मैंने उन्हें बताया। यह बताने के बाद मेरी माँ के चेहरे पर जितना आनंद होता, उतना ही आनंद चाची के चेहरे पर मुझे दिखा। हमें अपनी परेशनी को दूर रखकर दूसरों के सुख में सुखी होना आना ही चाहिए। मुझे चाची की आँखों में यही भाव दिखे। हमारे विषय में कौन क्या विचार करता है? यह महत्वपूर्ण नहीं है। हमें भी दूसरों के विषय में हमेशा अच्छा ही विचार करना चाहिए। दूसरों के प्रति अपने विचार अच्छे रखना, एक सफल जीवन और अच्छे चरित्र का लक्षण है। शब्द रुपी आधार भी उसमें सम्मिलित है। जो व्यक्ति की भावनाओं को शब्दों के माध्यम से दूसरों तक पहुँचाने का कार्य करते हैं। संत महात्मा बता कर गए हैं –"**यदि चित्त शुद्ध हो तो, विचार शुद्ध होते हैं।**"

गवर्नमेंट कॉलेज ऑफ पॉलिटेक्निक साकोली में मेरा नंबर लग गया। इंजीनियर बनने का सपना, मेरे जीवन की पहली सीढ़ी मैंने पार कर ली। मेरा कॉलेज साकोली के नजदीक सेंदूरवाफा नामक एक छोटे-से गांव में था। दिखने में गोडाउन या गॅरेज के समान टीन के शेड का था। गांव में रूम का किराया बहुत कम होने के कारण, मैं वहां अपने छह दोस्तों के साथ उनके कमरे में रहने लगा, जहाँ खाना बनाने से लेकर हमारे सभी काम हमें स्वयं करने पड़ते थे।

उस समय नए-नए प्रवेश लेकर आने वाले विद्यार्थियों को तकलीफ देने के उद्देश्य से रॅगिंग की परंपरा का चलन कॉलेज में था। छोटी-बड़ी बातों पर सीनियर-ज्युनियर की रैगिंग लेते। इसमें कभी बहुत मजा आता, तो कभी बहुत ज्यादा मन को ठेंस भी पहुँचती थी।

साकोली के बस स्टॉप पर हाथ में पतंग और चकरी न होते हुए भी पतंग उड़ाने की ॲक्टींग करने की रैगिंग। हम दस-बारह नए (फ्रेशर्स) लड़के आसमान की तरफ देखते हुए गर्मी के कारण आँखें मिचाने और पतंग उड़ाने की नक़ल (अक्टींग) कर रहे थे। रास्ते से आनेजाने वाले तथा बस स्टॉप पर खड़े सभी लोग हमारी तरफ बार-बार पीछे मुड़कर देखते और हँस रहे थे।

"अरे !... ये लोग पागल तो नहीं हो गए, कहकर हँसने और मजाक उड़ाने लगे।"

रैगिंग का समर्थन मैं बिल्कुल नहीं करता, परंतु नए लड़कों की शर्माने की आदत, उनका घबराहट भरा स्वभाव दूर करने में उपयोगी है, ऐसा मुझे लगता है। वैसे रैगिंग करना सरकारी नियमों के खिलाफ हैं, साथ ही वह किसी को मानसिक

तनाव तथा शारीरिक तकलीफ देनेवाली न हो ऐसा मेरा ईमानदारी से दिया गया मत है।

उस दिन से, लोग क्या कहेंगे? इसका डर मेरे मन से निकल गया। इस बात का फायदा मुझे अपना आत्मविश्वास बढ़ाने और स्टेज डेयरिंग में दिखने लगा। उस दिन अपनी रुम पर वापस आने के बाद हम सभी जोर-जोर से हँसकर लोटपोट हो गए। उस दिन के बाद से मेरी भीड़ में अपनी बात रखने की हिचकिचाहट काफ़ी कम हो गई।

कभी-कभी लोग क्या कहेंगे? इस विचार में हम इतने डूब जाते हैं कि, किसी विषय के बारे में हमें क्या लगता है, इसका विचार करना हम भूल ही जाते हैं, और अपने आप हम अपने पैर पीछे खींच लेते हैं। आत्मविकास की दृष्टि से स्टेज डेयरिंग एक बहुत अभिन्न एवं महत्वपूर्ण अंग है। आत्मविश्वास आपकी सबसे बड़ी शक्ति होती है।

हम कोई काम कर पाएँगे या नहीं, कोई हम पर हँसे तो क्या करें, कोई हमारे बारे में क्या विचार करेगा, इस तरह के अनेक विचार दिमाग में लेकर यदि हम स्टेज पर बोलने जाए तो स्टेज पर बोलने का आत्मविश्वास हमारे अंदर नहीं आएगा। एक बार गलत होगा !... दो बार गलत होगा !!.. और "जो हंसेगा उसके दांत दिखाई देंगे।" इतने सकारात्मक तरीके से अगर हम कोई काम करते हैं, तो कौन क्या कहेगा? इसकी अपेक्षा उसके उपहासात्मक व्यवहार से हमारे अंदर बदलाव लाने में सहायता मिलती है। वैसे भी "**संघर्ष में आदमी अकेला होता है, सफलता में दुनिया उसके साथ होती है। जिस जिस पर यह जग हँसा है उस-उस ने इतिहास रचा है।**"

कहते हैं ना - नींदक का घर पड़ोस में होना चाहिए। कबीर दास जी ने कहा है - "**निंदक नियरे राखिए, आंगनि कुटी छवाय। बिन पानी साबुन बिना, निर्मल करे सुभाय।**" अगर कोई हमारी गलतियाँ दिखाने हमारे साथ रहे, तो गलती से भी गलतियाँ नहीं होती। किसी भी बात की ओर हम सकारात्मक नज़रिए से देखें तो उसकी सकारात्मकता हमें अपने आप दिखने लगती है। आपके विचार आपके व्यक्तिमत्व को प्रभावित करते है, इसलिए उनका शुद्ध होना आवश्यक हैं।

आज भी मुझे हमारे साथ हुई रैगिंग की याद आने पर बहुत हँसी आती है। मैंने अपने जीवन की पहली रैगिंग सचमुच बहुत इंजॉय की थी। इस बहाने

सीनियर विद्यार्थियों के साथ बातें हुई, साथ ही उनसे मेरी जान-पहचान बढ़ी और मेरी कक्षा के दो विद्यार्थियों को कॉलेज की क्रिकेट टीम में शामिल होने का अवसर भी मिल गया।

हमारा सीनियर संतोष, कॉलेज की क्रिकेट टीम का कैप्टन था, जो आखरी साल में पढ़ता था। हमेशा हँसमुख और हँसाने वाला बिंदास !!... टीम के सभी विद्यार्थियों की कमियों पर अच्छा मार्गदर्शन कर उन्हें सँभाल लेता। उसने हमें अपने आप पर भरोंसा रखकर खेलना सीखाया। खेल कोई भी हो, अकेले खेलकर नहीं पूरी टीम ने अपनी जी-जान लगाकर खेलना अपेक्षित होता है। एक लीडर का सबसे बेहतरीन काम लोगों को उस ऊँचाई पर पहुँचाना है जहाँ वों पहुँच नहीं पा रहे हैं।

संतोष एक बहुत ही अच्छा नेतृत्व करने वाला खिलाड़ी था। उसमें नम्रता, स्पष्टता और साहस था। हँसते-खेलते वातावरण में गाने गुनगुनाते, हारने-जीतने का दबाव न रखते हुए हल्के-फुल्के वातावरण में खेलता और खेलना सिखाता। इसलिए हम हर-जीत के लिए नहीं तो अपनी खुशी के लिए खेलने लगे। हमने खेलते समय हार-जीत का विचार न कर जी भरकर खेलना और अपना सौ-प्रतिशत देना संतोष से ही सिखा। हमारी जिलास्तरीय क्रिकेट मैच देवमुंढरी गांव में होने वाली थी। पाँचों ही नॉटआउट मैच में अच्छी और बड़ी टीम को हराकर हम ट्रॉफी जीत कर लाए। सचमुच - कठिन परिस्थितियों में बहादूर व्यक्ति ही रास्ता निकालते हैं।

बाबूजी हमेशा कहते... तुम पाँचों बच्चे मेरे हाथ की पाँच उंगलियाँ नहीं अपितु मेरी मुट्ठी बनकर रहना। एक लकड़ी को तोड़ना आसान होता है परंतु लकड़ियों की गठरी को तोड़ना कठिन होता है। स्कूल में पढ़ी हुई इस कहानी का अर्थ अब समझ में आने लगा। बाबूजी के शब्दों में वह मुट्ठी, गठरी ही तो थी। दूसरों पर राज करने की अपेक्षा सभी को साथ लेकर आगे बढ़ने का कुछ और ही मजा होता है। जरुरतमंद लोगों को अपने साथ लेकर आगे बढ़ना, मैंने उसी दिन तय किया। अपनी भी एक टीम बनाई जाए और उसका नेतृत्व किया जाए। सबको साथ लेकर चलना, फिर वह भाई-परिवार या किसी खेल की टीम हो। संतोष की टीम स्पिरिट का मुझ पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा और "हाउ टू बिल्ड द परफेक्ट टीम।" (एक अच्छी टीम कैसे बनायीं जाती है।) यह मुझे संतोष से ही सीखने मिला।

हम सभी छह लड़के एक किराए के रूम में रहते। इंजीनियरिंग में इंजीनियरिंग ड्राइंग यह विषय बहुत ही महत्वपूर्ण होता है। मेरा इंजीनियरिंग ड्राइंग बहुत पसंदीदा विषय था। मेरे बाकी मित्रों को वह विषय पसंद नहीं था। इसलिए मैं उनकी ड्राइंग निकाल कर देता। उसके बदले में कभी एक ड्राइंग का एक रुपया मिलता या मेरा कोई काम कर देते कभी पिक्चर दिखाते, तो कभी नाश्ता खिलाते, मुझे यह सब बहुत अच्छा लगता साथ ही मेरा अच्छा खासा सराव भी होने लगा। कॉलेज में मेरे शिक्षक भी मेरी ड्रॉइंग की बहुत तारीफ करते जो स्वाभाविक ही था। **"यदि आप किसी काम को बहुत ख़ुशी से मन लगाकर करते हैं तो, आप उसमें पारंगत हो जाते हैं। "(Practice makes man perfect)** यह वाक्य उसी समय मेरे मन पर प्रतिबिंबित हो गया। कॉलेज के वे दो साल हँसते-खेलते कैसे बीत गए, हमें पता ही नहीं चला। अपना स्कोर अच्छा हो तो ही हमें कॉलेज चेंज करने की सुविधा मिलती है। ऐसा मेरे एक-दो दोस्तों ने किया था और मैंने भी वही प्रयास करने का निर्णय लिया। संयोग से पहले ही प्रयास में मुझे नागपुर के गवर्नमेंट पॉलिटेक्निक कॉलेज में एडमिशन मिल गई। **कहते है- बेहतर से बेहतर की तलाश करनी चाहिए मिल जाए नदी तो समंदर की तलाश करनी चाहिए।**

गांव और शहर की पढ़ाई तथा वातावरण में बहुत अंतर होता है। मुझे होस्टल पर भेजा गया। कॉलेज में दोस्तों के ग्रुप पहले ही बने हुए थे। मैं बीच में गया, इसलिए कोई मुझे इतनी आसानी से अपने ग्रुप में भला कैसे शामिल करता। यह मैंने अपने मन को पहले ही समझा लिया था। जीवन में ऐसी परिस्थितियों को कैसे सँभाला जाए?, इसकी अब आदत-सी हो गई थी। इसलिए डर को मैंने अपने मन में कभी फटकने ही नहीं दिया।

शहर के लड़के वैसे भी गांव के लड़कों को भाव कम देते हैं। यह मुझे यहां आने के बाद ही पता चल गया था। शहर का वातावरण, उनके रहन-सहन के तरीके, नए-नए कपड़ों में या महंगी गाड़ियों में घूमने वाले, अपनी अमीरी और आरामदायक जीवन में पले-बढ़े यह सभी लड़के और मेरे पास इनमें से कुछ भी नहीं था। सिर्फ नाम के लिए दो-तीन ड्रेस जो अलट-पलट कर पहनता। हमेशा साफ-सुथरा रहना और साफ-सुथरे कपडे पहनना ऐसे संस्कारों में माँ ने हमें बड़ा किया था।

मुझे यह समझ नहीं आता की लोग अपने रहन-सहन से क्या दिखाना चाहते हैं? हमारे पास दिखावे के लिए पैसे नहीं थे और न ही हमें ऐसे संस्कार

मिले। जो भी करना अपनी मेहनत के बल पर करना था। मुझे बैकबेंचर्स या भीड़ का हिस्सा बनकर रहना कभी अच्छा नहीं लगा। जहाँ भी जाएँगे वहां अपनी पहचान बनानी थी। जिसका एकमात्र रास्ता पढ़ाई के द्वार से ही गुजरता है, यह मुझे अच्छे से ज्ञात था। **"कौन कहता है आसमान में सुराख नहीं होता, एक पत्थर तो तबियत से उछालो यारो।"** दुष्यंत कुमार की यह पंक्तियाँ मुझे हमेशा बहुत प्रेरित करती रही है।

कक्षा में पढ़ाए जानेवाले टॉपिक्स को मैं घर में पहले ही पढ़ लेता। इसलिए वह पाठ कक्षा में पढ़ाते समय बहुत जल्दी समझ में आने लगे, इसलिए जब शिक्षक प्रश्न पूछते तो जवाब देने के लिए मेरा हाथ हमेशा ऊपर रहने लगा। यदि कुछ करने की ठान लो तो, आपकी कोशिश अवश्य सफल होती है।

एक सीधा-साधा गांव का एक दुबला-पतला लड़का पढाई में बहुत होशियार है, ऐसी मेरी पहचान बनने लगी। कक्षा में शहर के मॉडर्न, डॅशिंग हीरोगिरी करनेवाले लड़के-लड़कियों की नजरों में मेरी छवि बदल चुकी थी। माँ-बाबूजी के पैसों पर मौज-मस्ती करने वाले सभी थे। परंतु मुझे अपने कर्तुत्व के बल पर विजय प्राप्त करनी थी। कक्षा में ऐसे कई बैकबेंचर्स होते है जिनमे ऊँचाई-मोटाई, या रंग की वजह से आत्मविश्वास की कमी होती है। गांव और बहुत ही पिछड़े भागों से आए पिछड़े वर्ग के विद्यार्थी उस भीड़ में गुम होते चले जा रहे थे। वे पढ़ाई में होशियार थे लेकिन बात करने का आत्मविश्वास न जुटा पाने के कारण वे कक्षा में पीछे रहने लगे। उनके उज्जवल भविष्य के लिए कुछ करने की मन में अदम्य इच्छा थी।

माँ हमेशा कहती - उगते सूरज को हर कोई प्रणाम करता है; परंतु हमें सूर्यास्त के सूर्य को धन्यवाद देकर उसे कल आने के लिए प्रार्थना करनी चाहिए। जो कमजोर है उनकी मदद कर उन्हें साथ लेकर चलो, तुम्हारा अच्छा ही होगा। यही विचार माँ ने हमारे मन पर स्थापित किया था। जन्म से कोई भी परिपूर्ण नहीं होता। अपने अंदर बदलाव लाना हो तो, उस दिशा में कोशिश कर, हमें स्वयं को ऊँचा उठाकर जीवन में आगे बढ़ने की कोशिश करनी पड़ती है। जिस व्यक्ति के हौंसले बुलंद हो उसकी हिम्मत कोई नहीं तोड़ सकता।

मुझे भी उन कमजोर लोगों में "तुम भी कुछ कर सकते हो" इसकी प्रेरणा जगानी थी। मैं अपने दोस्तों से उनकी जीवन की कमजोर कड़ी पर चर्चा करता। उनके सुप्त गुणों को उभारने तथा पढ़ाई में मदद करने लगा। ड्रॉइंग प्रोजेक्ट में उन्हें मदद करते समय मुझे अपनी पढ़ाई में जो कठिनाइयाँ आती वह भी स्पष्ट

होने लगी। अब नए कॉलेज में मेरी भी एक टीम तैयार हो गई और मैं उस टीम का नेतृत्व करने लगा। **विजेता वों नहीं बनते जो कभी असफल नहीं हुए है बल्कि वों बनते हैं जो कभी हार नहीं मानते।**

उस समय शाहरुख खान का "राजू बन गया जैंटलमैन" यह सिनेमा आया था। उस सिनेमा में का शाहरुख खान हीरो के रुप में मुझे अपना-सा लगने लगा। उसके रुप में मैं अपने आप को कल्पना करने लगा। क्लास के सभी लड़के - लड़कियाँ मिलकर वह सिनेमा देखने गए। वहां बहुत भीड़ थी। बहुत कोशिश करने के बाद हमें टिकट मिली, परंतु हमें जो टिकट मिली वह अलग-अलग जगहों की थी। लेकिन सभी को साथ में बैठकर इस पिक्चर का आनंद लेना था। हमने एक उपाय निकाला और टॉकीज में लोगों को बिनती कर यहां-वहां बिठाया। हमें एक साथ सिनेमा देखने में बहुत मजा आया। मुझे ऐसी छोटी-छोटी घटनाओं से बहुत ख़ुशी मिली। सभी को साथ लेकर बिताए उन पलों को मैंने यादों के रुप में आज भी संजोए रखा हैं।

एक बार कॉलेज में भरे सांइस एग्जिबिशन में हमने एक "ऑटोमेटिक इलेक्ट्रिक ब्रिज" तैयार किया। यह हमारा एक ग्रुप प्रोजेक्ट था और मैं इस प्रोजेक्ट का लीडर था। मेरे ममेरे भाई रवि ने मुझे इस प्रोजेक्ट में बहुत मदद की। टेप रिकॉर्डर की छोटी मोटर का उपयोग कर यह ब्रिज बनाया था। यह ऑटोमेटिक इलेक्ट्रिक ब्रीज कॉलेज में चर्चा का विषय बना और हमारी टीम को प्रथम क्रमांक का पुरस्कार भी मिला।

उसके बाद थोड़े ही दिनों में पॉलिटेक्निक के सभी अध्यापकों के मुँह से उत्सुकतावश यही निकलता-

— "क्या यही है वह तारेंद्र !..... ।"

पूरा डिपार्टमेंट मुझे पहचानने लगा। सभी विद्यार्थी मेरे आगे-पीछे घूमने लगे। मेरी मदद लेने हॉस्टेल में आने लगे। कॉलेज की सुंदर लड़कियाँ भी मुझे भाव देने लगी। उस समय लड़कियों के साथ बात करना, बहुत बड़ी बात होती थी। मुझे हीरो जैसी डैशिंग फीलिंग का एहसास होने लगा। अब खुद का अस्तित्व मुझे उस कॉलेज में मिल गया था। मेहनत के पसीने से सफ़लता की फसल खिलती हैं यह मैंने समझ लिया था।

नागपुर के कॉलेज का एक साल कैसे बीत गया? पता ही नहीं चला। जीतू बारहवीं कक्षा में था। उसने एक साल का ड्रॉप लेने का निर्णय लिया। इस निर्णय

को स्वीकार करना घर के लोगों के लिए थोड़ा कठिन था, ऐसा मुझे लगा परंतु माँ ने कहा-

"तुझे लगता है ना कि एक साल फिर से पढ़ाई कर अच्छे मार्क्स मिलते हैं, तो ठीक है। एक साल तुम और अच्छे से पढ़ाई करो।"

एक साल बर्बाद होगा !... इस तरह का विचार माँ के मन में नहीं आया होगा क्या? बिल्कुल आया होगा। परंतु माँ जीतू के साथ डंटकर खड़ी रही।

नाइट कॉलेज से जीतू ने बारहवीं कक्षा में महाराष्ट्र में प्रथम क्रमांक प्राप्त किया। अपने भविष्य का निर्माण करते समय मुकाम को कैसे प्राप्त करना है, यह आत्मविश्वास अब और अधिक बढ़ गया। क्योंकि उम्मीद एक ऐसी उर्जा है, जिससे जिंदगी का कोई भी अँधेरा हिस्सा रोशन किया जा सकता हैं।

पॉलिटेक्निक से अभियांत्रिकी

हमारे मुंडीकोटा गांव के श्री शरद ढबाले चाचाजी जो मिलिट्री में होने के कारण उनके अनुशासन प्रिय जीवन का मुझ पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। उनकी पोस्टिंग नागपुर में ही थी। मेरी परीक्षा खत्म हुई और रिजल्ट आने तक डेढ-दो महीने का समय मेरे पास था।

शरद चाचाजी ने मेरी एक बिल्डर के साथ जान-पहचान करवा दी। मुझे याद है वह मुझे उनकी साइकिल पर बिठाकर दस किलोमीटर दूर सफ़र तय कर वहां तक लेकर गए थे। इंसानियत का जीता-जागता एक उदाहरण उस समय खुली आँखों से मुझे देखने मिला। हालांकि, इस दुनिया में हृदयशून्य लोगों से मेरा बहुत अधिक संबंध नहीं आया।

"हम अच्छे तो, जग अच्छा।" इस विचारतत्व पर चलने के कारण हमारी मदद के लिए दौड़कर आने वाले हाथ अधिक थे। मुझे नागपुर में दो महीने एक कंपनी में कंस्ट्रक्शन साइट सुपरवाइजर के तौर पर काम करने का एक सुच्छा सुअवसर मिला। सिविल इंजीनियरिंग के फील्ड वर्क का एक छोटा-सा पहला अनुभव मुझे वहां शरद चाचाजी के कारण ही मिला।

अब मेरा रिजल्ट आ गया था। मुझे 68% प्रतिशत अंक मिले। मैंने डिप्लोमा इन सिविल इंजीनियरिंग पास कर लिया, इसकी मुझे बहुत खुशी हुई। बैचलर ऑफ इंजीनियरिंग (बी.ई.) करने का लक्ष्य हमेशा से ही मेरे मन में था।

मेरे दोस्त ज्ञानेश्वर मदनकर ने मुझे बताया कि बी.ई.की एडमिशन 80% अंकों पर बंद होती है। सच्चे अर्थ में उस समय सत्य परिस्थिति से मेरी पहचान हुई। उस समय महाराष्ट्र में केवल आठ गवर्नमेंट इंजीनियरिंग कॉलेज थे। प्राइवेट कॉलेज की फीस भरना मेरे लिए संभव नहीं था। प्राइवेट कॉलेज की चालीस हजार रुपए फीस के मुकाबले गवर्नमेंट कॉलेज की फीस बहुत कम थी।

मन में उच्च शिक्षा प्राप्ति की प्रखर इच्छा-शक्ति के कारण किसी भी परिस्थिति में अब पीछे नहीं हटना था। अपने लक्ष्य तक पहुँचने की कोशिश करना है, यह मन में ठान लिया।

पास होने वाले विद्यार्थियों की लिस्ट में मेरा नाम नहीं था। अर्थात गैजेट में मेरा रोल नंबर था, पर मैं साकोली से ट्रांसफर लेकर आने के कारण मुझे मेरी मार्कशीट और कॉलेज की टी.सी. भी नहीं मिली थी। इधर बी.ई. का फॉर्म भरने की आखिरी तारीख नजदीक आ गई और उधर मार्कलिस्ट, टी.सी. (ट्रांसफर सर्टिफिकेट) का अता-पता नहीं। पॉलिटेक्निक का शिक्षाबोर्ड मुंबई होने से इस प्रक्रिया में बहुत लंबा समय लगा। मेरे पास रुकने का समय भी नहीं था लेकिन इसके सिवा और कोई रास्ता भी नहीं था। मैं अपने आप को बिल्कुल हतबल महसूस करने लगा और निराश हो गया।

मैं नागपुर के हमारे पॉलिटेक्निक कॉलेज में गया। बी.ई. का फॉर्म भरने के लिए जरूरी कोई भी कागजात मेरे पास नही थे। कागजात न होने का कारण बताकर मैंने उन्हें समझाने की बहुत कोशिश की। रिजल्ट न मिलने के कारण उन्होंने टी.सी. देने से भी इंकार कर दिया। अब एक ही काम हो सकता था। मैनें जिस गॅजेट के पन्ने पर मेरा नाम था उस की झेरॉक्स कॉपी (प्रतिलिपि) माँगी। मेरे नाम पर निशान लगाकर उन्होंने कॉलेज का स्टैंप और हस्ताक्षर कर दिए। वह एकमात्र डॉक्यूमेंट लेकर मैंने मुंबई जाने का निश्चय किया।

मुंबई में कोई जान-पहचान का भी नहीं था। किसे साथ ले जाऊँ? बहुत बड़ा प्रश्न सामने उपस्थित हो गया। तब नागपुर में रहनेवाले मेरे मारुति मामा मेरे साथ आने के लिए तैयार हुए।

मामा दूसरे की दुकान में रेडियो मैकेनिक थे। मामा के पास बहुत सारे काम थे और चार-पांच दिन की छुट्टी लेना उन्हें बहुत नुकसानदायक था। उनका आना संभव ही नहीं हो पा रहा था। उन्हें मुझ पर बहुत विश्वास था, मुझसे बहुत लगाव रखते । इसलिए मेरे पूछने पर मामा ने तुरंत ही छुट्टी ले ली।

उस समय फोन आदि की सुविधा उपलब्ध नहीं थी। इसलिए मुंबई जाने से पहले माँ से मिलना भी जरूरी था। दोपहर दो बजे हम नागपुर से मामा की गाड़ी से निकले। नागपुर, भंडारा, तुमसर और अंत में रात को नौ बजे मुंडीकोटा गांव में पहुँचे। माँ-बाबूजी को आगे की पढ़ाई की योजना के बारे में बताया और माँ ने बड़ी ही दृढ़ता से सहमति देते हुए कहा, बिल्कुल जाओ बेटा !!....

माँ ने रात में ही मेरे कपड़े धोकर सूखाने डाले दिए और सुबह निकलने से पहले मेरे हाथ में पांच-सौ रुपए रखे। इतनी मुश्किल परिस्थितियों के बावजूद माँ कैसे इतने पैसे जमा कर हमारी जरुरतों को पूरा करती होगी?

पता नहीं !... आज भी मेरे लिए यह उत्सुकता का विषय है।

उस समय मुंबई की टिकट शायद सौ रुपये थी। हम सुबह आठ बजे मुंडीकोटा से निकले और दोपहर तीन बजे की विदर्भ ट्रेन से मुंबई के लिए रवाना हुए। जनरल डिब्बे में रात भर धक्के खाते हुए जैसे-तैसे मुंबई पहुँच गए।

इसके पहले भी मैं मुंबई में एक बार कॉलेज की स्पोर्ट्स टीम के साथ गया था। मुंबई में तब कोई हमारी जान पहचान के या रिश्तेदार नहीं रहते थे। अब प्रश्न उपस्थित हुआ कि कहाँ जाएँ?... कहाँ रहे?..

कॉलेज की ओर से जब खेलने के लिए गया था। तब बदलापुर में रहने वाले दोस्त के घर में रूका था। अचानक मुझे याद आया और मेरे दोस्त तुषार देशमुख के घर जाने का हमने निर्णय लिया। मैं सुबह-सुबह ही तुषार के घर पहुँच गया। लोकल और रास्ते की भीड़-भाड़ सब कुछ मेरे लिए नया था, परंतु ऐसे समय में उसने मेरी बहुत मदद की। इंसानियत को उजागर करनेवाले मनुष्य जीवन में कितनी भी विकट परिस्थिति क्यों न हो हमें जीने की ताकत दे जाते हैं, यह सिद्ध हो गया।

फॉर्म भरने का आखिरी दिन आ गया। उस दिन सोमवार को मैंने अपना फॉर्म भरा। परंतु क्लर्क ने मार्कलिस्ट और टी. सी. के बिना फॉर्म लेने से इंकार कर दिया। बहुत हाथ पैर जोड़े लेकिन कोई फ़ायदा नहीं हुआ। शुक्रवार के दिन एडमिशन की प्रक्रिया में मार्कलिस्ट पास होना बहुत जरूरी था। सिर्फ गैजेट के भरोसे एडमिशन मिलना संभव नहीं था। एडमिशन के दिन इंटरव्यू के पहले, चाहे मैं कितनी भी कोशिश करता फिर भी मेरे लिए नागपुर आकर मार्कलिस्ट या टी.सी. ले जाना संभव नहीं था, क्योंकि मार्कलिस्ट कॉलेज में आई ही नहीं थी।

मैं सीधे मुंबई बोर्ड में पहुँचा। वहां मार्कलिस्ट देने की उनसे बहुत प्रार्थना की, परंतु सभी प्रयास व्यर्थ हुए। उन्होंने मुझे सभी तरह की प्रक्रिया समझा कर बताई लेकिन क्लार्क ने अड़िग स्वर में कहा -

"मार्कलिस्ट कॉलेज से ही मिलेगी !!.. हम आपको यहां इस तरह नहीं दे सकते !.. ।"

यह बता कर अपने-अपने तरीके से सभी अपनी मजबूरी का बखान कर उस परिस्थिति से निश्चिंत हो गए। सरकारी नियमों के बंधन के कारण वहां के कर्मचारियों को नियमो का पालन करना ही पड़ता हैं। किसी का फायदा या नुकसान को नहीं देखा जाता। परंतु सरकारी नियमों में जकड़ी यह शासन-व्यवस्था हमारी मानसिक परेशानियाँ ही अधिक बढ़ाती है। कितनी भी मदद करने की मन में भावना हो तब भी कोई फायदा नहीं होता। उन्होंने मुझे जाने के लिए कहा।

देखते हैं कुछ होता है क्या?..... इस विचार से मैं वहीं बैठा रहा।

"पत्थर को भी पसीना आता है" - यह सुना था। दो-तीन घंटे हुए, परंतु कोई रास्ता नहीं मिला। दोपहर चार बजे मुझे हमारे नागपुर के कॉलेज के एक सर वहां पर मिले। उन्हें मैंने अपनी आपबीती बताई। एक वरिष्ठ अधिकारी की मदद से उन्होंने मुझे डुप्लीकेट मार्कलिस्ट मिलने में बहुत मदद की। सर के रूप में साक्षात ईश्वर ही मेरी मदद के लिए दौड़कर आए, ऐसा मुझे लगा। उस शिक्षक महोदय के प्रति आभार व्यक्त करने के लिए मेरे पास उस समय शब्द नहीं थे।

शुक्रवार के दिन कॉलेज की एडमिशन लिस्ट लगने वाली थी। बारहवीं के बाद बी.ई. होता है, परंतु पॉलिटेक्निक उत्तीर्ण छात्रों की डायरेक्ट सेकंड ईयर में एडमिशन होने से, कुछ जगह आरक्षित रखी जाती। उस लिस्ट में मेरा वेटिंग लिस्ट पर एक सौ अस्सीवा नंबर था। दिल बहुत धड़क रहा था। पता नहीं क्या होने वाला है? एक-एक छात्र की एडमिशन होने लगी। अंत में नांदेड के कॉलेज में सिर्फ पांच जगह बाकी रह गई। अब इस कॉलेज में मुझे एडमिशन मिल जाए बस यही एक उम्मीद थी।

नांदेड के कॉलेज में सिविल वाटर मैनेजमेंट इस ब्रांच के लिए एडमिशन प्रोसेस शुरू हुई। सिविल वॉटर मैनेजमेंट में उत्तीर्ण विद्यार्थी एम.पी.एस.सी. (महाराष्ट्र लोकसेवा आयोग) की परीक्षा नहीं दे सकते। यह एक अच्छा पॉइंट देखकर मदनकर और मैंने चर्चा शुरू की। देखते ही देखते यह बात हॉल में अफवाह की तरह फैल गई। एडमिशन लेने वाले छात्रों की **"एक तरफ दरिया एक तरफ खाई "**, इस तरह की स्थिति बन गई।

उस समय मेरी परिस्थिति "नरो वा कुंजरोवा" महाभारत के युधिष्ठिर के समान हो गई थी। मैं झूठ नहीं बोल रहा था लेकिन हमारी चर्चा को बहुत अधिक प्रचार मिला। यदि MPSC की परीक्षा नहीं दे सकते तो, फिर इस ब्रांच में

एडमिशन लेकर कोई फायदा नहीं? यह सोचकर बहुत से विद्यार्थी प्राइवेट से सिविल इंजीनियरिंग करने के विचार से जाने लगे.. और अंत में मेरा नाम पुकारा गया।

डुप्लीकेट मार्कशीट और पास में टी.सी. न होने के कारण उन्होंने एडमिशन देने से इंकार कर दिया। अब दिल जोर जोर से धड़कने लगा। मुँह में आया निवाला, फिर से छीन लिया जायेगा क्या? ऐसा मुझे लगने लगा। मदनकर और मैंने सिलेक्शन कमिटी के सदस्यों से बहुत बिनति की। क्योंकि इन सब परिस्थितियों के लिए मैं प्रत्यक्ष रूप से जिम्मेदार नहीं था, इसलिए उन्होंने मुझे मंगलवार तक टी.सी. जमा करने की अनुमति दे दी और मुझे एडमिशन मिल गई। मेरी एडमिशन नांदेड के "गुरु गोबिंद सिंह अभियांत्रिकी महाविद्यालय" में बी.ई. (सिविल वाटर मैनेजमेंट) में हो गई। सब कुछ ठीक हो गया। देखते हैं जिंदगी हमें कब तक भटकाएगी, किसी दिन तो हमारी कोशिश रंग लाएगी। अब मैं काफ़ी अच्छा महसूस कर रहा था।

मैं नागपुर आया और अपने कॉलेज में टी.सी. के लिए पत्र लिखा। डुप्लीकेट मार्कलिस्ट की घटना ऑफिस के बाबू के लिए आश्चर्यजनक थी। यह सब घटना उन्हें फिर से बता कर मैंने टी. सी. प्राप्त की और अंत में मंगलवार तक नांदेड के इंजीनियरिंग कॉलेज में टी.सी. जमा कर दी।

कुछ पाने के लिए यदि हम मन से कोशिश करें तो हमें अपने ऊपर विश्वास रखना पड़ता है। वही विश्वास हमें उस लक्ष्य को प्राप्त करने में हमारी मदद करता है। हजारों निराशा की बातों में एक आशा छिपी होती है।

नांदेड़ से अभियांत्रिकी

मेरे बाद क्रांति, जीतू के साथ तुमसर में रहने के लिए आया। पढ़ाई के लिए वक्त मिले इसलिए जीतू ने बारहवीं कक्षा में ड्राप ले लिया। अनुभव इंसान को बहुत कुछ सिखाता है।

एक-एक अंक के लिए खींचतान करना हम देख रहे थे। इसलिए जीतू के ड्राप लेने के निर्णय का घर में सभी ने स्वागत किया। माँ ने भी उसके इस निर्णय में उसका साथ दिया।

नाइट कॉलेज में एडमिशन कर दोपहर में चक्की और बचे हुए समय में पढ़ाई ऐसी जीतू की नियमित दिनचर्या थी। 80% अंक लेकर वह नाइट कॉलेज में महाराष्ट्र में प्रथम आया। नियमित पढ़ाई करना, सराव और साथ ही कठोर परिश्रम उसके अच्छे अंको का राज था। उसे एडमिशन में कोई दिक्कत नहीं हुई। संयोग से हम दोनों भाई एक ही साल में बी.ई. में एडमिशन लेने वाले थे।

अब दोनों की पढाई का खर्चा कैसे होगा? नागपुर के VRCE (अभी VNIT) कॉलेज में एडमिशन प्रोसेस शुरु हो गई। बहुत मंथन करने के उपरांत जीतू ने नांदेड़ में ही एडमिशन लेने का निर्णय लिया।

"गरीबी यह स्कूल और परिस्थिति उत्तम शिक्षक होता है।" परिस्थिति को दोष न देते हुए कैसे उसके साथ सामंजस्य बनाया जाए, इसकी अब आदत-सी हो गई थी। इसलिए ऊपरी तौर पर विचार न कर बहुत सोच समझकर निर्णय लेने पड़ते, जिसमें हम सभी भाई सक्षम थे। माँ-बाबूजी सभी निर्णयों में हमारे साथ रहते थे।

कंप्यूटर इंजीनियरिंग में जीतू की नांदेड़ में एडमिशन हो गई। मेरे और जीतू के एडमिशन का ख़र्च चार हजार रुपये, ऊपर से आने-जाने, रहने का खर्चा करीब-करीब दस हजार रुपये माँ ने कैसे जमा किए होंगे? यह प्रश्न आज भी मेरे लिए अनुत्तरित है....? माँ को कई बार पूछने पर भी, उसने कुछ नहीं बताया।

माँ को गांव में अनेक लोग मदद करते। माँ के अच्छे आर्थिक व्यवहार से गांव के सभी लोग परिचित थे। जिससे, कभी-कभी कठिन परिस्थिति में कई मदद के हाथ आगे आते। आवश्यकता के समय माँ ने पैसों के अभाव में हमारे पढ़ाई के मार्ग को कभी अवरुद्ध नहीं होने दिया। माँ ने पैसों की व्यवस्था कैसे की होगी...? आज भी सोच कर अचंभित हो जाता हूँ। कई सालों बाद बातों ही बातों में बालू से मुझे पता चली की माँ ने अपना सोने का मंगलसूत्र गिरवी रखकर पैसों का बंदोबस्त किया था। पैसो की तंगी तो थी, पर माँ हमें इन सब बातों से दूर रखने का प्रयास करती थी।

मेरा कॉलेज नांदेड शहर से दस-बारह किलोमीटर दूर विष्णुपुरी गांव में था। कॉलेज के हॉस्टेल में सीमित जगह थी। इसलिए अधिक से अधिक विद्यार्थियों को नांदेड़ शहर में किराए से रूम कर रहना पड़ता। हम दोनों भाई भी हमारे एक मित्र गणेश डेकाटे के साथ रहने लगे। खाना बनाने से लेकर अपने हर काम हम स्वयं करते थे।

मेरा डिप्लोमा होने के कारण मेरी बी.ई. के दूसरे वर्ष में डायरेक्ट एडमिशन हो गई। जीतू हमारा जूनियर था। बड़े भाई के साथ रहने के कारण उसे थोड़ा-बहुत संकोच आता होगा।

दोस्तों के साथ रहने का मजा ही कुछ और होता है, साथ ही कॉलेज के जीवन का यह एक अहम हिस्सा है। कॉलेज के पलों को खुलकर जी सके इसलिए मैंने उसे उसके दोस्त के यहां रहने की सलाह दी।

शहर में रुम का किराया बहुत अधिक था। कॉलेज दूर होने से आने-जाने का खर्चा भी होने लगा। इसलिए हमने एक निर्णय लिया। जीतू नांदेड़ में उसके दोस्त की रूम में शिफ्ट हो गया। मैं विष्णुपुरी के पास आसर्जन नामक छोटे से एक गांव में मेरे दोस्त के साथ रुम शेयर कर रहने लगा। शहर के हिसाब से यहां रूम का किराया कम था। नांदेड़ में जहाँ तीन-सौ रुपए रूम का किराया था वही गांव में तीस रुपए में काम होने लगा।

परिस्थिति से गरीब, बारह से पंद्रह विद्यार्थी हम यही गांव में रहने लगे। ट्यूशन, पिक्चर देखना, हौटेलिंग या लड़का-लड़कियों के साथ गप्पेशप्पे लड़ाना, घूमना-फिरना, लड़कियों के साथ फ्लर्ट करना गांव में ऐसा कुछ भी नहीं था।

गांव में अपने काम से काम रखना पड़ता। कॉलेज से दूर हम जिस गांव में रहते। वह दो से ढाई किलोमीटर दूर होने के कारण हमें पैदल ही जाना पड़ता

जिससे सफर के पैसे बच जाते। हरे-भरे खेत से चलकर कॉलेज जाने में बड़ा मजा आने लगा।

मैं बहुत होशियार नहीं परंतु मेहनती और ईमानदार अवश्य था। नांदेड के कॉलेज में बी ई. में एडमिशन ली तब मुझे तैरना नहीं आता था। मैं तैरने के लिए पानी में कभी उत्तरा ही नहीं था। पानी का डर नहीं था परंतु पानी में जाने का जीवन में कभी अवसर ही नहीं आया। गांव के नजदीक गोदावरी नदी पर विष्णुपुरी नामक डैम था। उस नदी में मैंने अपने जीवन में पहली बार तैरना सीखा। डैम पर कॉलेज का बोट क्लब था। वहां पर बैडमिंटन और टेबल टेनिस का कोर्ट था। कॉलेज छूटने के बाद मैं सीधे बोट क्लब में जाने लगा। स्विमिंग, टेबल टेनिस, बैडमिंटन और फिर स्विमिंग इस तरह का रोज का दिनक्रम चलने लगा। रात में अँधेरा होने पर रुम पर वापस आ जाता था।

डैम के नजदीक नदी का पानी बहुत धीमी गति से बहता था। नदी का क्षेत्र बहुत बड़ा था। करीब-करीब एक किलोमीटर के आसपास बिना रुके तैरनेवाले को बोटिंग लाइसेंस मिलता। लाइसेंस देने वाले सर दो-चार महीने में एक बार वहां आते और परीक्षा लेते थे।

मैंने भी इस लाइसेंस को प्राप्त करने का संकल्प लिया। उस वक्त तक मैं ज्यादा से ज्यादा ५०-६० मीटर ही तैर पाता था। लेकिन उस दिन कहाँ से इतना जोश आ गया की, उस दिन मैंने तैरते-तैरते पूरी नदी को पार कर लिया और मुझे बोटिंग लाइसेंस मिल गया। यह अनुभव मुझे बहुत हिम्मत दे गया। फिर क्या था.., हर दिन कॉलेज के बाद, बोट लेकर दूर-दूर तक पानी में जाने का मजा ही कुछ और था।

सही अर्थों में पढ़ाई के साथ-साथ बड़े मजे करने के वह दिन थे। कोई काम यदि आत्मविश्वास और दृढ़ निश्चय से किया जाए तो निश्चित रूप से सफलता मिलती ही है। कोई भी खेल मन लगाकर सकारात्मक विचारों तथा जीतने की भावना से खेला जाए तो जीतने के अवसर दोगुना बढ़ने लगते हैं और मुझे भी ऐसे अवसर मिलने लगे।

बोट क्लब पर Canoe और Kayak नामक (छोटी बोट के प्रकार) ऐसी कई नाँवे थी, उन नावों में मैं जी भरकर पानी में घूमता। पानी में तैरते-तैरते बहुत अंदर तक जाकर ऊपर आता। नाव चलाते-चलाते पानी में छलांग मारकर फिर नाव में चढ़ जाता। मैंने हिम्मत से भरे ऐसे बहुत खेल खेले। रात को अंधेरा होने

के बाद रूम पर वापस आता। पढ़ाई के साथ साथ खेलने से मुझे बहुत खुशी मिलती । यह सब मेरे जीवन के यादगार पल थे। जीवन में असंभव कुछ भी नहीं होता है। हिम्मत के बल पर सब कुछ संभव हो सकता है।

कहते हैं - **"लहरों से डर कर नौका पार नहीं होती और कोशिश करने वालों की कभी हार नहीं होती।"**- (सोहनलाल द्विवेदी) जी की यह पंक्तियाँ मुझे बहुत प्रेरित करती हैं। गांव में रहते समय मुझे अजय भोंगे और रवि जोशी जैसे अच्छे दोस्त भी मिले।

ऐसे ही एक बार बोट क्लब पर एक सीनियर विद्यार्थी को पानी में डूबने से बचाते समय मैं ही मरते-मरते बचा था। उस दिन मैं पानी से इतना घबरा गया था कि चार दिन तक नहाया ही नहीं। आज वह सब याद कर कभी-कभी बड़ी हँसी आती है।

बी.ई. का तीसरा वर्ष भी यादों में खो जाने जैसा ही था। मुझे इस वर्ष प्रकृति को बहुत करीब से जानने का अवसर मिला। स्वछंद खुली हवा का बहना, ऊँचे-ऊँचे पर्वत, उसकी हरियाली, सुबह शाम नदी में डुबकिया लगाकर तैरना, खूब मजे किए। हालांकि, बचपन गांव में ही बीता जिसके कारण यह प्राकृतिक वातावरण मेरे लिए कुछ नया नहीं था। पर सच कहूँ तो प्रकृति के सानिध्य में जीना मैंने यहीं पर सिखा।

जमीन से आकाश की तरफ ऊँची उड़ान भरने वाले पक्षी का मिट्टी से नाता कभी नहीं टूटता। वह उतने ही स्वच्छंद रूप से आकाश में विचरण करता है और आकाश से जमीन पर वापस आता है, फिर से ऊँची उड़ान भरने के लिए। उसी तरह की उड़ान मुझे भी भरनी थी।

मेरा बी.ई. का तीसरा वर्ष भी पूरा हो गया। बहुत मेहनत से पढ़ाई कर मैं आगे बढ़ रहा था। प्रोजेक्ट सबमिशन का खर्चा अधिक बढ़ गया। घर से आनेवाले थोड़े से पैसों में दोनों का खर्चा चलाने में असली कसरत होती। अपना खर्च कम कैसे किया जाए इस पर विचार करने लगा?, खर्च वैसे बहुत अधिक नहीं था, परंतु दोनों के रूम का किराया, जीतू के बस का आने-जाने का खर्च बचाया जा सकता है क्या? इस तरफ थोड़ा ध्यान दिया।

कॉलेज के क्लार्क को घर की पूरी परिस्थिति बताई। क्लार्क ने कहा यदि दोस्तों के साथ उनकी रूम में एडजस्ट कर सकते हो तो कर लो। होस्टेल में हमारे

दो दोस्त गणेश डेकाटे और प्रशांत पुरी एक साथ रहते थे। हम दोनों ने उनकी रूम में रहने का निर्णय लिया।

हॉस्टेल में रहने का एक फ़ायदा हुआ। कॉलेज की कंप्यूटर लैब होस्टेल के विद्यार्थियों को किसी भी समय इस्तेमाल करने की अनुमति थी। जीतू के लिए यह एक सुवर्ण अवसर था। क्योंकि चौबीस घंटे सातों दिन यह कंप्यूटर लैब शुरू रहती। इसके अलावा हॉस्टेल कॉलेज के परिसर में होने के कारण आने - जाने का खर्चा भी बच जाता।

उस समय एक सेमेस्टर की फीस छह-सौ रुपए थी। मैंने हम दोनों के दो-सौ रुपए दिए। शायद नियम में यह बैठना मुश्किल था। जीतू और मैं होस्टेल के रूम में दो पलंग अधिक के डालकर गणेश और प्रशांत के साथ रहने लगे। परिस्थिति नए-नए अनुभव दे रही थी और हम सीखते जा रहे थे।

रहने का बंदोबस्त हो गया। अब खाने का प्रश्न उपस्थित हुआ? मेस चलानेवाले देव मामा को हमारी परिस्थिति की पूरी जानकारी थी, इसलिए उन्होंने भी भांजे "जब पैसे आएँगे !.. तब दे देना !... ।"

ऐसा कहकर बिना किसी शिकायत के हमें रोज खाना देना शुरू किया। मेस के देव मामा को जैसे जमता या घर से पैसे आते ही हम उन्हें देने लगे। सच बताया जाए तो गरीबी हमारी परीक्षा देख रही थी, परंतु परिस्थिति पर मात करना मैंने ठान लिया था। इंसान के रूप में भगवान समय-समय पर मदद के लिए आगे आते है, यह सच ही है।

मेस के देव मामा के हाथ का स्वादिष्ट खाना हमें संतुष्ट करने लगा। उन्होंने उस समय हमारी भूख को शांत किया, उनके उपकार हम आज भी नहीं भूल सकते। उनके हाथ के खाने में इतना स्वाद था कि कोई भी पंच पकवान उसके सामने फ़ीका है।

उस समय हमारे पास तीन ड्रेस थे। उसे ही हम अलट-पलट कर पहनने लगे। ऊँचाई, शारीरिक बनावट हमारी एक समान होने के कारण कई बार जीतू को तारे और मुझे जीतू कहकर कई लोग पुकारते थे। हम वह भी बहुत इंजॉय करने लगे, उसमें भी मजा आने लगा। बी. ई. करते समय कॉलेज को जी भरकर जीया। कॉलेज के दिनों को बहुत इंजॉय किया। यह मेरे जीवन के अनमोल पल थे। जीतू पर मुझे पूरा भरोसा था। हम दोनों भाइयों में बहुत अच्छा नाता तैयार हो गया था।

अब पढ़ाई के अलावा मुझे अपने लिए बहुत अधिक समय मिलने लगा। फोन, सोशल मीडिया का वह जमाना नहीं था। खाली समय में मैंने स्केटिंग सीखा और शतरंज बहुत खेला। पैरों में स्केट्स बाँधकर स्केटिंग करने में इतना डूब जाता जैसे मुझे एक-एक सीढ़ी चढ़ना नहीं, तो जीवन में बहुत तेजी से भागना था।

मुझे याद है एक बार तुमसर में शतरंज की प्रतियोगिता आयोजित की गई थी जिसमें हम दोनों भाई सेमीफाइनल तक पहुँचे। जीतू ने बड़े ही जोश से मुझे फाइनल में जाकर चैस का पारितोषिक जीत लाने के लिए कहा... और सचमुच हम जीत भी गए। छोटा होकर भी बड़े भाई का आत्मविश्वास बढ़ाया, जीतू ने यह काम मेरे जीवन में कई बार किया जो अक्सर मुझे याद आता है। जो अपने कदमों की काबिलियत पर विश्वास रखते हैं वो ही अक्सर मंजिल पर पहुँचते हैं। यह आत्मविश्वास मुझे जीतू की वजह से ही मिल पाया।

मैं कॉलेज का चेस चैंपियन था और युनिव्हर्सिटी स्तर पर उप-विजेता था। शतरंज का यह टुकड़ा मुझे यह जानने में मदद करता है कि हर बार जब मैं कुछ कहता या करता हूँ तो लोग क्या सोचते हैं और महसूस करते हैं। शतरंज खेलने से दिमाग की उत्तम कसरत होती है। जब आप शतरंज में एक चाल चलते हैं, तो आप अपने प्रतिद्वंद्वी के लिए ख़तरा पैदा करते हैं, लेकिन अपनी स्थिति में कमज़ोरी भी पैदा करते हैं, यदि मिलनेवाला इनाम जोखिम से बेहतर है तो आपको आगे जाना चाहिए। जब आप जीवन में कोई निर्णय लेना चाहते हैं, तो सब कुछ देखें और उस निर्णय से आपके जीवन का कौन सा हिस्सा प्रभावित होता है उस ओर ध्यान देकर समस्या सुलझाना हमें शतरंज सिखाता है। शतरंज खेलने का मतलब है कि आपको हमेशा यह उम्मीद करनी है कि आपका प्रतिद्वंद्वी सबसे अच्छी चालें खेलेगा। सब कुछ हमेशा आसान नहीं होता इसलिए आपको हर स्थिति से उबरने के लिए हमेशा कड़ी मेहनत और चतुराई से काम करना होगा। आपके जीवन में समस्याओं को हल करने के लिए तथा बौद्धिक निर्णय लेने के लिए मुझे लगता है कि स्कूल के हर विद्यार्थी को शतरंज खेलना ही चाहिए। कभी-कभी बाजी जितने के लिए चाल पीछे भी लेनी पड़ती हैं।

जीवन में खेल का एक विशिष्ट स्थान होता है। खेल से शरीर और मन स्वस्थ्य बनता हैं। मन में धैर्य और साहस की भावना बढ़ती हैं। जीवन में उसके बाद मैंने हर खेल बहुत मन लगाकर खेला। कोई भी खेल सिर्फ खेल समझ कर नहीं अपितु प्रतियोगिता की भावना से देखने लगा। हर खेल के कुछ नियम और उनकी तकनिक, अक्सर हमारे जीवन को बदलने में बहुत आवश्यक और

उपयोगी होते हैं। फुटबॉल, बास्केटबॉल, वॉलीबॉल स्केटिंग, क्रिकेट, बैडमिंटन, हर खेल में मैंने अपनी छाप छोड़ने के प्रयास किए। इसलिए खेल का स्थान हमारे जीवन में अवश्य प्रेरक स्वरूप में होना चाहिए। जिंदगी एक खेल है और हम खिलाड़ी, जिसे खेल की भावना से खेलना चाहिए हार-जीत तो इसका अहम हिस्सा होता हैं।

जब मैं फाइनल ईयर में था। प्रोजेक्ट का चुनाव करते समय मेरे सामने दो विकल्प थे। एक सहज - जैसे होशियार लड़कों की टीम के साथ एक बहुत ही अच्छा वेल डिफाइंड प्रोजेक्ट बनाना और दूसरा कठिन, जो विद्यार्थी पढाई में कमजोर है उन्हें अपने साथ लेकर प्रोजेक्ट लीड करना। कुछ हटके करने के इरादे से मैंने दूसरा विकल्प चुना। दस फीट बाय पांच फीट डैम का स्ट्रक्चर तैयार करना था, जिससे पानी से भरे हुए डैम के निचले स्तर पर पानी का कितना दबाव निर्माण होता है यह सिद्ध करना था।

प्रा. हुंडीवाला सर की बहुत दिनों से यह एक इच्छा थी। डिजाइन, बिल्डिंग कंस्ट्रक्शन, पाइपिंग आदि प्रोजेक्ट के लिए सर अपनी जेब से दस हजार रुपये देना मंजूर किया था। हमारी टीम के लिए प्रोजेक्ट बहुत जोख़िम से भरा, परंतु चैलेंजिंग था। मेटल, वेल्डिंग और अन्य सामान के लिए कई बार नांदेड़ में जाना पड़ता था। कॉलेज में आते ही सर अपनी हीरो हौंडा बाइक की चाबी मुझे सौंप देंते थे। फिर क्या था सर की गाड़ी से हम अपने प्रोजेक्ट के सभी काम करने लगे। हमें हर संभव मदद सर ने की। जिनका स्वभाव अच्छा हो, उन्हें अपना प्रभाव दिखाने की जरुरत नहीं पड़ती।

दिन-रात मेहनत की, परंतु डैम के मॉडल में पानी भर जाता था तो कभी यहां-वहां से लीक होने लगता। इतना खर्चा करने के बावजूद, भी हमारा प्रोजेक्ट सफल नहीं हो सका। परंतु हुंडीवाला सर ने हमारी मेहनत को बहुत सराहा। हमें पूरे अंक देकर पास कर दिया। उनके द्वारा दी गई यह सीख तथा आदर्शों को मैंने अपने जीवन में अपनाया। मैं यहां अमेरिका में विद्यार्थियों की प्रोजेक्ट सफल होने में उनकी मेहनत देखता हूँ। भले ही उसमें सफलता मिले या न मिले लेकिन हमारी मेहनत कड़ी होनी चाहिए। जिंदगी में हमेशा एक नई शुरुआत आपका इंतजार करती हैं।

फाइनल ईयर में पढ़ते समय एक और अनुभव मन को छू गया। अंत के सेमेस्टर में मैंने सैटेलाइट रिमोट सेंसिंग यह इलेक्टिव कोर्स लिया। उसके कारण हमें हैदराबाद में एक हफ्ते की ट्रेनिंग के लिए नेशनल रिमोट सेंसिंग सेंटर (NRSC, Hyderabad) में जाने का अवसर मिला। वहीं से सैटेलाइट और नासा के विषय में बहुत आकर्षण निर्माण हुआ। कभी न कभी जीवन में इस क्षेत्र में काम करने का अवसर मिलेगा ऐसी उम्मीद थी और सचमुच मैं बहुत भाग्यशाली रहा। मैं अपनी माँ के अच्छे कर्म और उनके आशीर्वाद से आज इसी क्षेत्र में कार्यरत हूँ।

पॉलिटेक्निक की सभी परीक्षाएँ मैंने कम से कम दो या तीन दिन पढ़ाई कर पास की थी। पढ़ाई करते समय हमारा दिमाग जो हमने एक या दो बार पढ़ा है वह हमें परीक्षा के समय कितना याद आएगा? उसे किस तरह हमें याद रखना है? किस तरीके से पढ़ाई करना है? मैं इन सब का नियोजन करने लगा। हाथ में पुस्तक लेकर जब मैंने ऊँची उड़ान भरने के ख्वाब देखे थे, तब बहुत पढ़ाई की। पढाई योग्य दिशा में साथ ही कितनी और कैसे करना आपको यह पता होना चाहिए।

पढ़ाई और मिले अंक ही हमें हमारी पहचान दे सकते हैं। मैंने यह स्वयं के मन को इतना समझाया कि अपनी मेहनत 100% देने का प्रयास करने लगा।

फाइनल ईयर में था। तब GATE गेट की परीक्षा पास करने वाला मैं मेरे डिपार्टमेंट का पहला व एकमात्र विद्यार्थी था। GATE में मुझे 88% अंक मिले थे। M.Tech के लिए आईआईटी मुंबई (IIT-B) में जिस दिन एडमिशन के लिए जाना था, उसी दिन मेरा बी.ई फाइनल ईयर का पेपर था। इसलिए वहां जाना संभव नहीं हो पाया। मुझे बहुत बुरा लगा, क्योंकि आईआईटी मुंबई में एम.टेक कर आगे पी.एच डी. के लिए अच्छा अवसर था। हाथ से बहुत कुछ निकल गया, यह मैं खुली आँखों से देख पा रहा था। सचमुच कुछ बातों के लिए कभी-कभी अपने आप ही मार्ग बंद हो जाते हैं, परंतु इच्छा हो तो मार्ग अपने आप खुल भी जाते है। अक्सर मुसीबत का सामना करने से हमारी आँखें खुल जाती हैं।

एम. टेक. और भाइयों की शादी

आईआईटी (मुंबई) से एम.टेक. का अवसर हाथ से निकल चुका था। मेरी बीई की परीक्षा खत्म हो गई और मैं तुमसर में आ गया। कौन से कॉलेज से एम.टेक. करना है इस पर मेरा मंथन चल रहा था। आई.आई.टी रुड़की में एम.टेक. की एंट्रेंस परीक्षा का प्रवेश पत्र मुझे मिला। तुमसर से चौबीस घंटो का सफर तय कर, मैं रुड़की में पहुँचा, बहुत थका हुआ था। परीक्षा देकर शाम के समय तुमसर जाने के लिए रुड़की स्टेशन से निकलकर बस से दिल्ली के लिए निकला। दिल्ली से अंतिम ट्रेन दस बजे की थी।

मैं तुरंत टिकट काउंटर पर गया और पांच-सौ रुपए की नोट टिकट के लिए दी। दिल्ली से नागपुर की टिकट एक-सौ अस्सी रुपए थी। मुझे तीन सौ बीस रूपये वापस देने की बजाय उसने मुझे अस्सी रूपये और माँगे। मैंने जब पूछा कि मैंने तुम्हें पांचसो रुपए की नोट दी है, तो उसने तुरंत मुझे सौ रुपए की नोट दिखाई और झूठ बोलते हुए मुझे गलत साबित करने के लिए कहा-- वहां पुलिसवाला खड़ा है जाओ उससे मेरी शिकायत करो। उस पुलिसवाले का चेहरा देखकर और बेफिजुल की झंझट से बचने के लिए अस्सी रुपए देना ही मुझे उचित लगा। मैं जैसे - तैसे टिकट लेकर ट्रेन के खचाखच भरे सेकंड क्लास डिब्बे में घुसा और एक कोने में खड़ा हो गया। बहुत थकावट के कारण आँखों में भरी नींद सही नहीं जा रही थी। सीधे लंबी सीट के नीचे लोगों के पैरों के पीछे गीले स्थान पर ही मैं गहरी नींद में सो गया। शायद यह मेरे जीवन की सबसे गहरी नींद थी।

दूसरे ही हफ्ते में नागपुर के VRCE कॉलेज में एम.टेक. (एन्वायरमेंटल इंजीनियरिंग) में मेरा नंबर लग गया। आई.आई.टी. रुड़की मैं भी मेरा नंबर लगा था। परंतु VRCE में मैंने पहले ही फीस जमा कर दी थी, जिसके कारण आईआईटी रुड़की में न जाने का निर्णय लिया।

मेरी M.Tech. की पढ़ाई शुरु हो गई अब सबकुछ मानो स्थिर हो गया था। जीवन में आर्थिक तकलीफे तो थी लेकिन उस समय बहुत अधिक महसूस नहीं हो रही थी क्योंकि मुझे अठारह सौ रूपये विद्यावेतन (फेलोशिप) मिल रही थी जो मेरे अकेले के जीवनयापन के लिए काफी थी।

पैसे बहुत है इसलिए उसका किसी भी तरह इस्तेमाल किया जाए, या उडाया जाए मुझे उचित भी नहीं लगता। बेकार खर्चा करने का मेरा स्वभाव नहीं था। आत्मनिर्भर, स्वाभिमानी जीवन जीने की दिशा में मेरे कदम आगे बढ़ रहे थे। बचे हुए पैसे कभी-कभी मैं अपने घर में या जीतू को भेजता। एम.टेक. के लिए मेरे समान नियमित छात्रों के अलावा कुछ जगह गवर्नमेंट इंजीनियर (PWD) के लिए आरक्षित रखी जाती।

M.Tech. में पढते समय, मेरे साथ ऐसे कई अधिक वेतन वाले गवर्नमेंट इंजीनियर थे। जिन्हें पैसों की कोई कमी नहीं थी। जीवन में पहली बार अमिरों के साथ रहकर उनकी अमिरी को बहुत नजदीक से जानने का मौका मिला। रात में बड़े-बड़े होटल की पार्टियाँ, उनका हाई-फाई लाइफस्टाइल का हिस्सा बनकर, मैं उनके साथ स्टेटस बनाये रखने लगा। इसके बावजूद भी मुझे अपनी गरीब परिस्थिति का एहसास था।

मैं रात को हाय-फाय होटल का खाना जरुर खाता लेकिन अपनी पहचान भला कैसे भूल जाता? इसलिए मैं सुबह नागपुर के रास्ते पर चना-तर्री-पोहा, वडापाव खाकर खुशी-ख़ुशी अपने दिन काट रहा था। अमिर दोस्तों के साथ रहकर उनका क्या फायदा उठाना? मन में कभी ऐसी भावना नहीं आयी या उस सोसाइटी का शिकार होकर मुझे अपने अंदर पैसों का गुमान नहीं चढने देना था।

मैं सही अर्थ में M.Tech. करते समय पढ़ाई कैसे की जाती है इस कला में माहिर हुआ। पढ़ाई का भी एक ऊँचा स्तर होता है। हम कितने समय पढ़ाई करते हैं इसकी अपेक्षा हम पढ़ाई कैसे करते हैं यह महत्वपूर्ण होता है। कम समय में अधिक पढाई कैसे करना? उसकी तकनीक मैं सीख गया। इन दो सालों में मेरी कोशिशों को सही मायने में योग्य दिशा मिली। मेरी मौखिक परीक्षा के दिन मेरे प्रेजेंटेशन की पूरी तैयारी होने के बावजूद भी मैं घबरा गया। मौखिक परीक्षा लेने के लिए आई टीम के सामने मैं आत्मविश्वास से सात-आठ स्लाइड प्रस्तुत करने के बाद एकदम घबरा गया, कुछ समझ में नहीं आ रहा था।

कोई हसकर, तो कोई उपहासात्मक नजरों से मेरी ओर देखने लगे। मेरी ओर देखकर हँसने वालों की कोई कमी नहीं थी। मैं पसीने से लथपथ था। मेरा आत्मविश्वास पूरी तरह टूट चुका था। हाथ पैर शक्तिहीन हो गए। मेरी तरफ देख कर कुछ बुदबुदाने लगे। मौखिक परीक्षा लेने आए ग्रुप में डॉ. तपन चक्रबोर्ती (नीरी रिसर्च सेंटर के मेरे सह-मार्गदर्शक/CO-Guide) भी थे। मेरे इस तरह घबराने से उन्हें आश्चर्य महसूस हुआ..!!

मेरा साफ सुथरा काम देखकर कोई भी खुश हो जाए ऐसा था। आज तक मैंने मेहनत व ज़िद से काम करने की प्रवृत्ति को ही अपने जीवन में अपनाया था। पता नहीं उन्होंने मेरे अंदर क्या देखा? लेकिन मुझे फिर से एक अवसर दिया। मैंने साइंस लैब में जाकर व्यक्तिगत रूप से उन्हें अपने प्रोजेक्ट का प्रेजेंटेशन दिया।

मेरी मेहनत देख सर बहुत खुश हुए। सही मायने में वह मेरे जीवन के अपने आप से पहचान कराने वाले पल थे। हमें अपनी पहचान स्वयं निर्माण करनी पड़ती है। अच्छा काम ही हमारी पहचान होती है। मेरे ऊपर हँसनेवालों पर उस समय मुझे बहुत गुस्सा आया। कहते है ना - **जिस-जिस पर यह जग हँसा है, उस-उस ने इतिहास रचा है।** मेरा सफ़र इसी दिशा में आगे बढ़ रहा था। जीवन में मुझे फर्श से अर्श की ओर बढ़ना है, यह लक्ष्य सामने रख, मैं दिन-रात मेहनत करने लगा।

डेढ़ वर्ष के दौरान नीरी (NEERI) में प्रोजेक्ट करते समय काम के प्रति मेरी लगन और मेहनत देखकर देशकर सर ने मुझे रेफरेंस पत्र देकर मुंबई के एक साइंटिस्ट से मिलने के लिए बताया।

M.Tech. की पढाई पूरी होने बाद मैंने छह-सात महीने नागपुर में ही नौकरी की। बड़ा शहर मुझे अपनी ओर आकर्षित कर रहा था। काम का अच्छा अनुभव आए, इसलिए मैं मुंबई में चला गया।

कुछ समय पश्चात ठाणे शहर में एक बड़ी महाबल एन्विरोंमेंटल कंपनी में भी मैंने छह-सात महीने काम किया। उसके बाद चर्चगेट में KLEAN एन्विरोंमेंटल कंपनी में नौकरी के लिए प्रयास किया। इस तरह मुझे थोड़ा-थोड़ा कर काफी काम का अनुभव मिल गया।

इस डेढ़ वर्ष के दौरान मैं पीएच.डी. का काम पूरी तरह भूल गया। परंतु अब मेरे मन में शोधकार्य करने का विचार आया। देशकर सर का रेफरेंस पत्र मेरे पास ही रखा हुआ था।

मैं अमेरिका से पीएच.डी. कर आए डॉ. केलकर सर के पास गया। उन्हें देशकर सर का दिया हुआ पत्र दिखाया। मेरा M.TECH के डिस्टिंक्शन और गेट (GATE) का स्कोर देखकर उन्होंने मुझे पीएच.डी. करने की सलाह दी तथा IIT मुंबई में अप्लाई करने के लिए बताया। कुछ ही समय बाद मेरी एडमिशन IIT मुंबई में हो गई। अब पीएच.डी. की दिशा में मेरा सफर शुरू हो गया। आईआईटी यह चौबीस घंटे सातों दिन कार्यरत रहने वाला इंस्टिट्यूट है। जहाँ कई विद्यार्थी दिन हो या रात आपको लैब में पढ़ाई करते दिखाई देंगे।

और इस तरह मेरा जुलै 1999 से पीएच.डी. की दिशा में सफर शुरू हो गया। मैंने एक वर्ष बहुत मेहनत की। पीएच.डी. करने के लिए पाच छह वर्ष लगते हैं, यह सर्वज्ञात सत्य है। इसलिए पीएच.डी. करते समय अधिकांश विद्यार्थी शादी कर लेते है।

तब मुझे छह हजार रुपये विद्यावेतन (स्टायफंड) मिलने लगा था। यह शादी का उचित समय है ऐसा मुझे लगने लगा। छह हजार रुपए में दोनों का खर्चा अच्छे से निकल सकता था। इसलिए मैंने शादी का विचार मन में सुनिश्चित कर लिया।

मेरी पीएच.डी. को अब एक साल पूरा हो गया था। पीएच.डी. का प्रपोजल अब सबमिट करने का समय आ गया। तब नियति ने मेरी सारी मेहनत पर पानी फेर दिया। तुमने अपनी पीएच.डी. का कोई काम नहीं किया। उन्होंने मुझे बताया और मेरे ध्यान में आया कि हमारे सर ने एक वर्ष में सिर्फ उनके प्रोजेक्ट का काम मुझसे करवाया था। सच बताऊँ तो एक साल से मैं सिर्फ उनकी हमाली कर रहा था। अब क्या करें? कुछ समझ नहीं आ रहा था?

"धोबी का कुत्ता न घर का न घाट का" इस कहावत के समान मेरी अवस्था हो गई। मीठा-मीठा बोलकर मौके का फायदा उठाकर सर ने मुझसे अपना काम निकलवा लिया। पीठ पीछे छुरी चलाने वाले से सावधान रहना चाहिए। यह मुझे इस अनुभव से सीखने को मिला।

मन दु:ख से भर उठा था। परंतु अब क्या करे? गुरु द्रोणाचार्य ने एकलव्य से अँगूठा माँगा और एकलव्य ने उन्हें दे भी दिया था। गुरु तो गुरु है, उन पर न तो शक किया जा सकता है और न ही कोई जवाब पूछा जा सकता है।

शादी के बाद का जीवन मुंबई में

जीतू 1997 में बी.ई. पास हो गया और उसे नौकरी मिल गई। शुरुआत में पूना और उसके बाद ठाणे में सॉफ्टवेयर इंजीनियर के रूप में जीतू नौकरी करने लगा। गांव में चाय की दुकान अब बंद हो गई। माँ-बाबूजी तुमसर में ही आकर रहने लगे। हम ने अब एक बाइक भी खरीद ली थी।

इसी दौरान माँ ने मेरी शादी की इच्छा जताई और ज़िन्दगी का नया दौर शुरू हो गया। शादी के लिए जब लड़कियाँ देखने गए। तब वहा हमें बड़े अलग - अलग अनुभव आए वहां का एक रोचक किस्सा सुनाता हूँ। ...

मैं मुंबई से लड़कियाँ देखने के लिए आया, तब जीतू ठाणे में ही रहता था। मामा ने लड़कियों की एक सूची बना रखी थी। एक रविवार के दिन हमारा लड़कियाँ देखने का कार्यक्रम निश्चित हुआ।

माँ और बाबूजी तुमसर से उसी दिन आए। उसके बाद हम लड़की देखने गए। लड़की अच्छी पढ़ी-लिखी हो बस यही हम सबकी अपेक्षा थी। हमने लड़की देखी, लड़की काफी अच्छी थी, परंतु जीतू कान में कुछ फुसफुसाया -

भैया..!! यह आपको बिल्कुल नहीं जचेगी !! जोड़ी कैसी..!! मेड फॉर ईच अदर होनी चाहिए।

ऐसी तीन-चार लड़कियाँ एक ही दिन में देखकर हम नागपुर से तुमसर वापस आए। इस विषय की समस्त जिम्मेदारी हमने जीतू पर छोड़ रखी थी।

मुंबई जाने का दिन नजदीक आ गया। फिर भी लड़की पसंद नहीं आयी। अगली बार आएँगे तब देखेंगे। ऐसा कह कर शाम के वक्त बाते करते समय, अपर्णा की दादी अपर्णा का रिश्ता लेकर हमारे पास आई। कल ही जाना है तो फिर लड़की कैसे देखेंगे? हमने मना कर दिया। दादी ने बहुत ज़िद की और कहा -

"कल सुबह लड़की देख लो... और फिर चले जाओ।"

सुबह-सुबह मैं, बाबूजी, जीतू और भंडारा में ही रहने वाला मेरा दोस्त प्रशांत हम लड़की देखने के लिए गए।

सुंदर-सी साड़ी में दुबली-पतली अपर्णा नाश्ते (पोहा) का ट्रे लेकर जब हमारे सामने आई, उसे देखते ही मुझे और जीतू को अपर्णा पसंद आ गई। जीतू ने मेरे कान में कहा....

"हाँ.. हाँ !... भैय्या हाँ !... यह एकदम सही है।"

मुझे भी अपर्णा एक ही नजर में भा गई। शो केस की आलमारी में जो ट्रॉफिया रखी थी। मैंने ऐसे ही बात करने की कोशिश करते हुए अपर्णा से पूछा?

यह सभी ट्रॉफिया तुम्हारी है क्या?

वह जोर से हँसी और उसने कहा - "नहीं ! यह मेरी नहीं है।"

यह उसने स्पष्ट ही बता दिया। अपर्णा का हँसना और मेरा उसकी हँसी को देखकर उस पर फिदा होना। हमारा जन्मो-जन्मो का रिश्ता जुड़ गया। मैंने एक पल भी गँवाए बिना माँ और बाकी भाइयों को भंडारा में बुला लिया। प्रशांत के घर बैठकर मीटिंग हुई और अपर्णा के लिए हामी भर दी।

हमारी सगाई फरवरी महीने में होने के बाद हमें शादी के लिए दस महीने का समय मिल गया। इन दस महीनों में हमने एक-दूसरे को बहुत अच्छी तरह समझने की कोशिश की। एक दूसरे की पसंद-नापसंद, आशा-अपेक्षाओं को जानने का प्रयास किया।

शादी के पहले अपने होने वाले जीवन साथी से मिलने का कुछ और ही मजा होता है। मैं वैसे भी थोड़ा फिल्मी किस्म का था। बाइक पर पीछे अपर्णा को बिठाकर--- "एक रास्ता है जिंदगी, अकेला गया था मैं.. हाँ मैं... ना आया अकेला, मेरे संग.. संग.. संग.. संग.. आया तेरी यादों का मेला" ऐसे एक नहीं तो कई गाने गाना मुझे अच्छा लगता। जब शादी तय हुई, अपर्णा एम.एस.सी. सेकंड ईयर में पढ़ रही थी।

अप्रैल महीने में उसके कॉलेज की पिकनिक का एक स्टाफ मुंबई में था। मुझे रात में नौ बजे उसका पीसीओ सेंटर से फोन आया। वे लोग मुंबई के विरार भाग में किसी बड़े हाईवे के पास पीडब्ल्यूडी के (सरकारी) गेस्ट हाउस में ठहरे थे।

मुंबई में आए हैं, पर शायद हम मिल नहीं पाएँगे !! उसने कहा...

सुबह छह बजे मिलेंगे ना?... मैंने कहा...

उसे मेरी बातों पर यकीन ही नहीं हो रहा था। मैंने तुरंत ही अपने दो-चार दोस्तों को फोन कर विरार गेस्ट हाउस का पता ढूँढ निकाला। ठाणे में रहने वाले मेरे दोस्त उमेश को मैंने फोन कर बुला लिया। रात को बारह बजे तक वह मेरे आईआईटी केंपस में पहुँच गया। उसके बाद दो घंटे बैठकर बिनाका गीतमाला स्टाइल के गानों की कैसेट रिकॉर्ड की। मैं और उमेश सुबह तीन बजे विरार गेस्ट हाउस के पास अपर्णा को मिलने के लिए गए। टैक्सी, ट्रेन, बस, रिक्शा का सफर तय कर सुबह छह बजे हम विरार गेस्ट हाउस पहुँच गए। दो घंटे बैठकर कैसेट रिकॉर्ड करने और उसे मिलने जाने के सफर में एक अलग ही मजा था।

छोटे-छोटे लगने वाले ये पल हम दोनों के मन को जोड़नेवाले हमारे जीवन के अविस्मरणीय पल थे, जो आज भी मन के किसी कोने में छिपे है और याद करने से एक अलग एहसास दे जाते हैं।

अपर्णा को चार छोटी बहन और एक भाई इस तरह उनका भी परिवार बड़ा था। अब मैं लाखनकर परिवार का बड़ा बेटा और अपर्णा के (धाबेकर परिवार का) घर का बड़ा दामाद बन गया। हमारे घर में मुझसे छोटे मामा के बेटे और अपर्णा के मामा और मौसी के लड़के-लडकियाँ आदि से भरा पूरा परिवार था।

मुंबई में मेरा एक साल बेकार हो गया था। अब जैसे-जैसे शादी की तारीख नजदीक आती गई मेरा मन कई विचारों से भर गया। अब पीएच.डी. करने में मेरा मन नहीं लग रहा था। मन में विचारों का सैलाब उमड़ पड़ा। यदि इसी तरह चलता रहा तो मेरे पी.एच.डी. करने में कई साल बर्बाद हो जाते। आठ-आठ, दस-दस साल मेहनत करने पर भी पीएच.डी. न मिलने के कारण ऐसे कई विद्यार्थियों को निराश होते हुए मैंने देखा है। कहते है- **"जब टूटने लगे हौंसला तो याद रखना बिना मेहनत के हासिल तख्तों ताज नहीं होते, ढूँढ लेना अंधेरों में मंजिल अपनी क्योंकि जुगनू कभी रोशनी के मोहताज नहीं होते।"**

मन में हलचल शुरू हुई। अब मैं क्या करूँ? कुछ समझ नहीं आ रहा था। नौकरी या पीएच.डी.? क्या करना चाहिए, इस असमंजस की परिस्थिति से मैं गुजर रहा था।

शादी के लिए तुमसर में जाने से पहले मैं एक कंपनी में इंटरव्यू देकर आया था। शादी 21 दिसंबर को थी। 18 दिसंबर को यहां आते ही मैंने अपर्णा को पी.एच.डी. छोड़ने के निर्णय के विषय में बताया। उसके लिए सचमुच यह धक्कादायक था। परंतु उसने भी यह परिस्थिति सँभाल ली।

शादी के पहले इस तरह के धक्कादायक झटके स्वीकार करना थोड़ा कठिन होता है। इसलिए ऐसे समय में अपने घर में न बताने का निर्णय उसने भी लिया और मुझपर पूरा भरोसा रखा।

मेरे दिए हुए इंटरव्यू का कंफर्मेशन लेटर भी मेरे घर में आ गया। पीएच.डी. छोड़कर नौकरी करने का अब मैंने पक्का इरादा कर लिया। शादी होने के बाद उसके और मेरे घर में पीएच.डी. छोड़ने के विषय में सब को बताया इस बात को सुनकर मुझे बाकी सभी की सहमति और साथ मिला। हम यदि मेहनत करते हैं तो उसका फल हमें अवश्य मिलता ही हैं।

विजय लांजेवर नाम के मेरे एक दोस्त ने मुझे मुंबई में एक सिंगल बेडरूम का फ्लैट किराए पर लेकर दिया। हम आईआईटी IIT हॉस्टेल में न जाकर सीधे हमारे किराए के अपार्टमेंट में गए और हमारी गृहस्थी शुरु हो गयी। ट्रेन से भेजा हुआ सामान हमें दो महीने तक मिला ही नहीं। गलती से वह दूसरे स्टेशन पहुँच गया था। सामान मिलने तक हमारा घर होस्टल से लायी एक छोटी इलेक्ट्रिक सिगड़ी और दो चार बर्तन पर जैसे-तैसे शुरु था।

नौकरी में कुछ दिन बीत जाने के बाद मैंने सर को पीएच.डी. छोड़ने के बारे में बताया। मैं अपना बहुत नुकसान कर रहा हूँ ... ऐसा कहकर उन्होंने मुझे बहुत खरी-खोटी बातें सुनायी। सच बताया जाए तो नुकसान किसका होने वाला था? यह भी समझ न आए इतना नादान तो मैं नहीं था। उनका मुफ्त में काम करने वाला एक मेहनती, होशियार बेरोजगार हमाल कम होने वाला था। इसलिए उनकी नाराजगी व्यर्थ नहीं थी ...और मैंने पीएच.डी. का काम करना छोड़ दिया।

शादी, नौकरी सबकुछ अच्छी तरह चल रहा था। अब जीवन में काफ़ी स्थिरता आ गई थी। परंतु पीएच.डी. करना ही है यह बात कहीं तो मन को झकझोर रही थी। पी.एच.डी. ही मेरा सबकुछ था। मेरा सपना मुझे शांत नहीं बैठने दे रहा था। मेरा पीएच.डी. का सपना कही अधूरा न रह जाए यह डर महसूस होने लगा। डॉक्टर डिग्री के आगे घुटने टेक दिए हो ऐसा लग रहा था और हार मानना मेरे स्वभाव में नहीं था। मैं परिस्थिति से दो-दो हाथ करने के लिए पूरी तरह तैयार था। क्योंकि- ऊपर उठने में वक्त तो लगता है चाहे वह सूरज ही क्यों न हो धीरे धीरे ही उगता हैं। मैने फिर से पी.एच.डी. करने के लिए हाथ-पैर मारना शुरू कर दिया।

जीतू ने इंजीनियरिंग की पढ़ाई पूरी कर ली थी। पूना में कुछ महीने नौकरी करने के बाद वह अमेरिका पहुँच गया। एक दिन फोन पर हम दोनों बात कर रहे थे। बातों ही बातों में उसने कहा -

"भैया !!.. तुम्हारी पढ़ाई और तुम्हारा गेट का स्कोर भी बहुत अच्छा है। इतने सारे लोग यहां पढ़ने और नौकरी के लिए आते हैं, तुम भी अमेरिका में आकर पढ़ने की कोशिश करो...!!"

शादी को अभी डेढ़ साल ही हुआ था। बारह से पंद्रह घंटे ऑफिस के काम के बाद पी.एच.डी.के लिए समय निकालना संभव नहीं था। अपर्णा भी प्रेग्नेंट थी। वह भी भंडारा/ तुमसर में आई हुई थी। मेरे निर्णय को वह स्वीकार न कर शायद उसमें मेरा साथ न दे इसका मुझे डर था। इसलिए मैंने उसे न बताकर फिर एक जोखिम उठाने का निर्णय लिया और मैंने अपनी नौकरी छोड़ दी।

GRE और TOEFL के क्लास लगाकर पढाई शुरू कर दी। क्रांति का बी.ई. का कोर्स भी पूरा हो गया। उसकी भी शादी हो गई। आरती और क्रांति मुंबई में आकर दोनों भी GRE के लिए मेरे साथ पढाई करने लगे।

रात में लैंडलाइन इंटरनेट के रेट कम होते थे। इसलिए हम अलग-अलग देशों के (यूएसए, केनेडा, यूके, ऑस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड) करीब-करीब 500 के ऊपर प्रोफेसरों को हमने अपनी एप्लीकेशन भेजी थी । तब तक हमारा GRE का स्कोर भी आ गया। मुझे दो-चार प्रोफेसर ने अमेरिका से पी.एच.डी. के लिए अप्रोच किया और मैंने वहां जाने का निर्णय लिया। आस्था दस महीने की थी तब मुझे अमेरिका में पी.एचडी. के लिए एडमिशन मिल गई। अगस्त महीने के आखिरी हफ्ते में मैंने अमेरिका जाना तय किया।

अगस्त के पहले हफ्ते में जीतू ने कहा - भैय्या एक बार यदि तुम अमेरिका में आ गए तो, तुम्हें करीब-करीब दो वर्ष तक भारत में वापस जाना संभव नहीं होगा।

जीतू की भी शादी की उम्र हो गई थी। इसलिए मैंने जाने के पहले उसकी शादी करने का सुनिश्चय किया। हमारे पास दो हफ्ते थे। दो हफ्तों में लड़कियाँ देखकर शादी कैसे होगी? एक बहुत बड़ा सवाल हमारे समक्ष उपस्थित हो गया।

जीतू अमेरिका से अगले हफ्ते आने वाला है। इसलिए हमने पहले ही उसके लिए लड़कियाँ देख रखी थी । नागपुर, गोंदिया, भंडारा, रामटेक की करीब-करीब आठ लड़कियाँ हमने देखी। उनमें से एक हमें पसंद आ गई।

जीतू के आते ही हमने उसे लड़कियाँ दिखाने की शुरुआत की। सुबह निकल कर एक दिन में चार लड़कियाँ हमने देखी। लड़कियाँ देखने का यह कार्यक्रम बहुत ही थकावट से भरा था परंतु उसके अलावा हमारे पास कोई दूसरा रास्ता भी नहीं था। उनमें से दो लड़कियों को जीतू ने पसंद किया।

एक लड़की गोंदिया और दूसरी नागपुर, दोनों लड़कियाँ अच्छे घर की थी। नागपुर की कंप्यूटर इंजीनियर पढ़ी लड़की जीतू को पसंद आ गई।

गोंदिया की लड़की जब हम देखने गए थे। हमारे साथ हमारी गाड़ी के जो ड्राइवर थे, उसके लिए भी उस लड़की ने (पोहा) नाश्ता लाया। भीतर बुलाकर ड्राइवर को उसने पोहा दिया। मुझे उसके स्वभाव की यह बात बहुत पसंद आई। क्योंकि घर सँभालने के लिए, सबका का मान सम्मान और सामाजिक जिम्मेदारी की समझ रखनेवाली, लड़कियाँ अच्छे से घर संभालती है ऐसा मेरा विश्वास था और हमारे घर के लिए ऐसी ही लड़की की जरुरत भी थी। उसे मैंने अपनी बात समझाते हुए हर दृष्टिकोण से क्या सही है और क्या गलत इस पर हमारी रातभर चर्चा चलती रही। अंत में सुबह तक जीतू को मेरी बात समझ में आ गई।

कहते हैं ना – शादी के लिए जोड़ियाँ स्वर्ग से बन कर आती है। हम सिर्फ माध्यम मात्र होते हैं। जिसके नसीब में जो लड़की होती है, उसे वह बराबर मिलती है और वैसी ही परिस्थितियाँ तैयार होने लगी। हमने गोंदिया की लड़की को हामी भरने का निश्चय कर लिया। रंग और सौंदर्य यह तो सिर्फ कुछ समय के लिए ही होता है। सुंदरता ध्यान अपनी ओर खींचती है पर अच्छा स्वभाव दिल को अपनी ओर आकर्षित करता है। मन की सुंदरता अहम होती है, यह मेरा दृढ़ मत था।

सुबह जीतू ने लड़की पसंद होने का निर्णय बताया। मैंने तुरंत ही घर के सभी सदस्यों को बताकर गोंदिया में लड़की के घर फोन किया। उन्हें आगे का निर्णय लेने के लिए सात बजे की ट्रेन से तुमसर आने का निमंत्रण दिया। उन्होंने हमारे बारे में पहले ही जानकारी निकाल ली थी। गरीब परिस्थिति में भी मेहनत के बल पर आगे बढ़ने के कारण किसी भी तरह की कोई दिक्कत उन्हें नहीं थी ।

दिशा और उसके माता-पिता तुमसर आ गए। उन्हें पूरी परिस्थिति के बारे में बताया और उसी दिन दस बजे कोर्ट में शादी का निर्णय लिया। दिशा का पासपोर्ट नहीं था। शादी के बाद जीतू के साथ दिशा को भी अमेरिका में जाना पड सकता हैं इसलिए पासपोर्ट मिलना बहुत जरुरी था।

मैंने मेरे ही एक भाई को दोनों के कागजात देकर कोर्ट में भेज दिया। कोर्ट से ही सारी प्रक्रिया कर ली। हार, मिठाई सब चीजें हम साथ लेकर गए। लड़की देखने के चार घंटे बाद ही उनकी शादी कोर्ट में हो गई। घर में ही भोजन आदि हुआ।

उसी दिन दोपहर नागपुर में पासपोर्ट के लिए हमने अप्लाई किया। घर में माँ ने पंडितजी से मुहूर्त निकलवा लिया। जाँच-पड़ताल के लिए कागज़ात गोंदिया में भेजे गए।

उसी समय मेरे तीसरे नंबर का भाई बालू ने खुद की शादी की इच्छा के बारे में बताया। उसे भी पहले से ही एक लड़की पसंद थी। क्यों न उसकी भी शादी निपटा ली जाए ऐसा तय किया। हमने उसी समय वही गाड़ी नागपुर की दिशा में वापस घुमाई। लड़की के घर पहुँचते ही उन्हें सारी परिस्थिति की जानकारी दी। इतनी जल्दी में शादी करना उनके लिए किसी धक्के से कम नहीं था। किसी भी तरह के सवाल-जवाब किए बगैर **"मियाँ बीबी राजी तो, क्या करेगा काजी।"** बालू और स्नेहल की शादी उसी दिन गुरुवार को ही निपटा ली जाए ऐसा हमने तय किया।

इसीतरह बालू और स्नेहल की भी शादी हो गई। लगातार दो दिन तक नागपुर में हमने शॉपिंग की। दिशा, स्नेहल, बालू, जीतू और मैं अमेरिका में लगने वाली कुछ चीजें जो मैं अभी तक खरीद ही नहीं पाया था, वह सब इनके साथ जाकर खरीद ली।

इधर तुमसर में माँ ने घर में शादी की पूरी तैयारी कर ली। रिश्तेदारों को फोन करके शादी का निमंत्रण दिया गया। इतनी जल्दी में क्यों, कैसे, कब, कहाँ, रिश्तेदारों के कई प्रश्नों का अंबार माँ के सामने आने लगा। ऐसे अनेक प्रश्नों का माँ ने बहुत ही शांति से जवाब दिया।

माँ की एक बात मुझे बहुत पसंद आती थी। माँ प्रथा, परंपरा और लोग क्या कहेंगे? इसमें बिल्कुल नहीं पड़ती। समय के अनुसार अपने जीवन में परिवर्तन उसने बिना किसी शिकायत के सहज रूप में आत्मसात किया था।

जीवन में वर्तमान परिस्थिति को स्वीकार कर जीना, माँ को पसंद था। क्या सही है और क्या गलत माँ को इसकी अच्छी जानकारी थी। हमारे लिए जो उचित हो ऐसे निर्णयों में माँ हमारा मार्गदर्शन और समर्थन करती थी।

इसलिए जीवन के किसी भी मोड़ पर चाहे परिस्थिति कितनी भी विपरीत क्यों न आई हो? निर्णय लेना हमारे लिए बहुत आसान हो गया। किसी भी बात का अडम्बर माँ ने कभी नहीं किया। माँ ने शादी की पूरी तैयारियां कर ली। अब तय तिथि के अनुसार शादी का दिन गुरुवार आ गया।

जीतू की बारात सुबह आठ बजे गोंदिया के लिए रवाना हुई। दस बजे मंगलाष्टक और शादी की सभी विधियाँ संपन्न हुई। सप्तपदी आदि विधि-विधान के लिए अधिक समय लगने वाला यह देखकर छोटू और कुछ अन्य लोगों को भोजन करवाकर, एक गाड़ी में बिठा कर माँ के साथ तुमसर के लिए रवाना कर दिया।

उसी दिन शाम के समय बालू की भी शादी होने के कारण माँ ने घर में आने के बाद बालू को हल्दी लगाकर दूल्हे के रुप में तैयार किया।

दो बजे तक जीतू और दिशा की बारात लेकर हम तुमसर में अपने घर पहुँच गए। दिशा का गृह प्रवेश हुआ। तुरंत ही सभी बारातियों के साथ बालू की बारात नागपुर के लिए रवाना हुई। माँ ने जीतू की हल्दी निकाली और नहलाने की विधियाँ निपटा कर शादी के लिए हम नागपूर आ गए।

नागपुर में पासपोर्ट ऑफिस में मुझे एक काम था। मैं शादी के बाद थोड़ा मोटा हो गया और सर पर बाल भी कम हो गए थे। इंटरनेशनल एयरपोर्ट पर बिना किसी कारण पासपोर्ट की कोई परेशानी न हो इसलिए चार-पाँच साल के लिए वैध होते हुए भी मैंने पासपोर्ट पर लगा फोटो बदलने करने का निर्णय लिया।

पासपोर्ट ऑफिस में सब काम निपटाकर मैं शादी के मंडप में साढ़े सात बजे तक पहुँच गया। जैसे ही मैं सभागार में पहुँचा शादी की विधियाँ शुरू हो गई थी। खाना खाकर बालू और स्नेहल की बारात तुमसर के लिए रवाना हुई। यहां पहुँचकर बड़ी ही धूम-धाम से स्नेहल का भी गृह प्रवेश हुआ।

आठ दिन के अंदर शादी जोडने का काम कर दोनों शादियाँ बिना किसी विघ्न के उत्तम तरीके से संपन्न हुई। इसकारण एक संतुष्टि की साँस लेकर मैं रात में चैन की नींद सो गया। **"चट मंगनी पट ब्याह"** की भागदौड़ कर सभी लोग थक चुके थे। आलस और थकावट की वजह से सब इधर-उधर लुढ़क रहे थे। बातों ही बातों में वह दिन कैसे निकल गये, पता ही नहीं चला।

अमेरिका की उड़ान

अमेरिका जाने के कुछ दिन पहले मुझे सर का ई-मेल आया। कुछ कारणों की वजह से उन्होंने मेरी पूरी फैलोशिप नामंजूर कर दी। खाने-पीने और ट्यूशन की फीस इतनी ही फैलोशिप मुझे मिल सकती थी। कैसे और क्या किया जाए, अब फिर सवाल उपस्थित हो गया। परंतु अब अमेरिका जाने का संकल्प पक्का था।

हर चीज के दो पहलू होते है। हमें ऊपर से दिखने वाली सभी चीजें उसी रूप में मिले ऐसा कैसे हो सकता है? और सच बताया जाए तो संघर्ष और सपने पूरा करते समय अच्छे-बुरे परिणामों के लिए भी तैयार रहना पड़ता है। किसी भी समस्या से हार मानने की बजाय, उसका सामना धैर्य रखकर करना हमारे हाथ में होता है, तभी हम योग्य दिशा में आगे बढ़ सकते हैं। जो सपने देखने की हिम्मत करते हैं वही दुनिया जीत सकते हैं।

यदि फेलोशिप पूरी मिल जाती तो चिंता की कोई बात ही नहीं थी। परंतु इतनी कम फेलोशिप में नए देश में अपना खर्चा चलाना और छोटी-सी आस्था को साथ लेकर जाना बहुत कठिन था। बहुत सोच विचार के बाद अकेले ही अमेरिका जाने का फैसला किया। सब कुछ ठीक होने के बाद फिर दोनों को अमेरिका ले जाऊँगा। घर के सभी सदस्यों ने मेरे इस निर्णय का स्वागत किया और मुझे पूरा सहयोग दिया।

शाम हो गई। अब मेरी जाने की तैयारीयां शुरू हो गई। दूसरे ही दिन मुझे मुंबई पहुँचना था। आज तक का मिलों का सफर मैंने अकेले ही तय किया था। मानो अकेले सफर तय करने की आदत-सी हो गई थी। परंतु आज मेरे लिए सब कुछ कठिन था।

एक तरफ मैंने जो सपने देखे थे उन्हें पूरा करने का अवसर था। तो दूसरी ओर मेरी पत्नी अपर्णा और मेरी आठ महीने की छोटी-सी बच्ची आस्था को यहां

भारत में छोड़कर अकेले ही सात समंदर पार अमेरिका जाना था। आज तक के मेरे इस जीवन सफर में मेरे परिवार का साथ ही मेरी हिम्मत थी। लेकिन अब कमजोर पड़ने का समय नहीं था।

मैंने मन पर पत्थर रखकर जो निर्णय लिया, उसे पूरा करने का समय अब आ गया। जैसे-जैसे समय आगे बढ़ रहा था वह सही है या गलत ऐसे कई विचारों का मन में तूफान उठने लगा।

माँ-बाबूजी और सास-ससूरजी का आशीर्वाद लेकर, आस्था को जी-भरकर देखा। मुझे अपने से दूर जाते देख अपर्णा की आंखों में आँसू आ गए। मैंने अपने आँसुओं को जैसे-तैसे रोक रखा था। क्योंकि मुझे अपनी आँखों में उन सबको बिठाना था।

मैं मुंबई के लिए रवाना हो गया। एक माँ का बेटा, अपर्णा का पति और आठ महीने की बच्ची आस्था का पिता आँखों में आँसू भर अपने जीवन की मंजिल और सपनों को पूरा करने के लिए अब ऊँची उड़ान भरने जा रहा था। मैं दूर देश में अपने एक नए विश्व का निर्माण करने के लिए निकल पड़ा।

उस समय का जीवन इंटरनेट के इशारो पर नहीं चलता था। आज की तरह घर-घर में इंटरनेट नहीं था। इसलिए सीधे इंटरनेट कैफे की तरफ भागा। अगस्त महीने में अमेरिका की सारी टिकट बुक थी। मंगलवार को किसी भी परिस्थिति में मुझे अमेरिका पहुँचना था। रात को साढ़े-आठ बजे बहुत कोशिश करने के बाद टिकट पक्का हो गया। उसी दिन रात को डेढ़ बजे की फ्लाइट थी। सात समुंदर पार अमेरिका जाऊंगा, पर मैं रहूंगा कहाँ?

"कोहरे से एक बात अच्छी सीखने को मिलती हैं जब जीवन में रास्ता न दिखाई दे तो बहुत दूर तक देखने की कोशिश करना व्यर्थ है, एक-एक कदम आगे बढ़ते चलो रास्ता अपने आप खुलता चला जाएगा।"

बचपन से ही आसमान की तरफ दूर आसमान में उड़ने वाले हवाई जहाज को देखते समय बहुत ही उत्सुकता से देखना, मुझे अच्छा लगता। विमान नीचे से ऊपर की ओर उड़ान कैसे भरता है और यहां से वहां तक कैसे पहुँचता है, मेरे लिए उत्सुकता का विषय था। आकाश में उड़ने वाला विमान यानि मानव निर्मित पंखों का लोगों द्वारा बनाया पक्षी। इतनी अधिक समानता मुझे पक्षी और विमान में लगती थी।

चेक-इन के दो घंटे पहले मैं अपने दोस्तों के साथ हवाईअड्डे पर पहुँचा। आवश्यक सभी वस्तुएँ भारत से ही लेकर जाने का मेरा प्रयास था। उस सामान से ही मेरी तीन चार बैग भर गई थी। सामान के साथ मैंने बोर्डिंग किया। समय पर कोई परेशानी न हो इसलिए जो भी नियमावली थी उसका योग्य रीती से पालन करने लगा। सामान की चेकिंग यह मेरे लिए एक बहुत बड़ा काम था इसलिए सबकुछ ठीक हो जाने पर मैं सुकून भरी साँस ले पाया।

मैं एअरपोर्ट पर बैठे-बैठे बड़ी-बड़ी ट्रॉली बैग लेकर आते-जाते लोगों को एकटक देख रहा था। चार पैसे बचने चाहिए, इसलिए मैं तुमसर, देवाड़ी, तिरोडा, मुंडीकोटा बिना पास के जैसे-तैसे सफर करने वाला, आज परदेस जाने के लिए हवाई जहाज का सफर करने के लिए तैयार बैठा था। सपनों को आशा के पंख यदि लग जाए तो सफलता की उड़ान निश्चित है। मुसीबतों को पार करने की क्षमता हमारे अंदर होनी चाहिए, यह मैंने अपने अनुभवों से सीखा।

अमेरिका पहुँचने में अब एक-दो नहीं, अठारह घंटे लगने वाले थे। मुंबई इंटरनेशनल एयरपोर्ट से विमान का सफर डेढ़ बजे मैंने शुरू किया। सीट बेल्ट लगाया, पेट में गुदगुदी हो रही थी और विमान ने टेक ऑफ किया। सही मायने में वह मेरे सपनों का सफर था। अँधेरे में खिड़की से बाहर देखा तो टिमटिमाती असंख्य लाईटो के प्रकाश में मुंबई जगमगा उठी थी। दूर-दूर तक सिर्फ रात का अँधेरा और उसमें टिमटिमाते लाईट के प्रकाश में चाँदनी की बरसात हो रही हो ऐसा दृश्य दूर-दूर तक फैला नज़र आ रहा था।

"गुडबाय मुंबई !... "ऐसा कहकर मैं आकाश से मुंबई को देखने लगा। इसी मुंबई में मैंने लोकल में भीड़ के धक्के खाए थे। मुंबई के रास्ते पर वडापाव खाकर मैंने कईबार अपनी भूख को शांत किया। नौकरी के लिए बहुत मेहनत की। इसी मुंबई में बोर्ड के ऑफिस में बाहर बेंच पर बैठकर मैंने डिप्लोमा के सर्टिफिकेट के लिए घंटों राह देखी थी। सपनो की नगरी, माया नगरी कहकर गौरवान्वित की जाने वाली इस मुंबई ने मुझे इस भीड़ में भी अपनी गोद में समा लिया था। टेक्नोलॉजी के इस जमाने में मुझे मेरी पहचान मुंबई से मिली और आज इसी मुंबई को छोड़कर मैं आगे जा रहा था।

मेरे आसपास के सभी लोग आँखों पर पट्टी बाँधकर सो गए। लेकिन मेरी आँखों की पलकों के पीछे सब ठीक तो हो जाएगा ना? ऐसे प्रश्न घूम रहे थे। दो हफ्ते की बहुत भागदौड़ के कारण मुझे खाँसी हो गई। अमेरिका में बीमारी लेकर तो नहीं जा रहा हूँ। ऐसे एक नहीं कई सवालों का सैलाब उमड़ आया था।

दस घंटों का मुंबई से यूरोप और उसके बाद आठ घंटों का यूरोप से अमेरिका का सफर था। आसमान में काले-नीले बादल घूम रहे थे। अंतरिक्ष ने बादलों की चादर ओढ़ ली हो ऐसा प्रतित हो रहा था। छोटी-सी खिड़की से झाँककर मैंने अपनी आँखों में जितना समा सकता, उतना इस विस्तृत आकाश को समेट लिया। टेक्नोलॉजी के इस जगत में सचमुच मानव निर्मित शोधकर्ताओं को अभिवादन करता हूँ। इसतरह बादलों को चीरते हुए मेरा सफर जारी था।

उपग्रह, सेंसर की सहायता से जमीन के फोटो निकालकर उत्सर्जन नापने का काम करता है। कितने मिलिमीटर बारिश पड़ने पर बारिश का पानी जमीन में कितने सेंटीमीटर तक शोषित किया जाता है। यह मेरा पी.एचडी. के शोध का विषय था। जमीन पर होनेवाली बरसात के पानी का स्तर और उसका खेती में उपयोग किस प्रकार किया जाए? साथ ही अन्य तरीकों से जमा किए पानी पर मुझे शोधकार्य करना था।

कौन से भागों में बारिश नहीं होती? या बारिश होने पर पानी बहकर कहाँ जाता है? कौन से भागों में पानी शोषित नहीं किया जाता या जहाँ कम बरसात होती है, वहां अकाल सदृश परिस्थिति कैसे तैयार होती है।

जमीन के फोटो अब उपग्रह से निकालना मेरे लिए आसान हो गया था। उपग्रह से जमीन को देखना संभव हो पाया। मैं एक तरह का उपग्रह ही हूँ; ऐसा मुझे लगने लगा। मेरा यह शोधकार्य मेरी दृष्टि से बहुत ही रोमांचकारी साथ ही विविधता से भरा हुआ था। इस बारे में मुझे बहुत उत्सुकता महसूस होती थी। अमेरिका विषुववृत्त के ऊपर के भाग में होने के कारण, गर्मी के दिनों में यहां दिन बहुत बड़ा होता है। अगस्त महीने में शाम के समय छह बजे के आसपास यहां पर बहुत अच्छी सुनहरी धूप छाई हुई थी। बिना किसी विघ्न के मेरा सफर अच्छा रहा।

एयरपोर्ट पर अपर्णा का मौसेरा भाई संजय खोब्रागडे और जीतू का दोस्त प्रवीण मारुपड़गी मुझे लेने आए थे। संजय और प्रवीण दोनों के घर करीब-करीब डेढ़-दो घंटों के अंतर पर होने के कारण मुझे न्यूयॉर्क में रहने के लिए घर ढूँढना जरुरी था।

मैं रात को संजय के घर रहकर सुबह नौ बजे निकला। रास्ते पर सुनसान सन्नाटा छाया देखकर घबराहट महसूस हुई। कहीं कर्फ्यू तो नहीं है? ऐसा मुझे लगने लगा। न्यूयॉर्क शहर बहुत बड़ा है। मैंने अमेरिका पहुँचने के बाद तुरंत

रिसर्च सेंटर जाकर ज्वाइन कर लिया। कॉलेज के पास एक अपार्टमेंट में एक छोटी-सी रुम किराये से ले ली। जीत की खातिर जूनून चाहिए। इसी जोश व जूनून से मैं दिन-रात वहां अपने विषय पर संशोधन का काम करने लगा।

अमेरिका में अपने सपने और लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए मेरा जीवन-संघर्ष का सफर शुरू हो गया। साथ ही अपने परिवार से विरह की शुरुआत भी यहीं से हुई। मैं अब उसे अनुभव कर पा रहा था। मेरे पास सब कुछ होते हुए भी मेरी मुट्ठी खाली थी। सचमुच क्या हमारे सपने इतने बड़े होने चाहिए? कई बार मैं अपने आप से ही प्रश्न पूछने लगता हूँ। आज तक की मेहनत का शायद यहीं उत्तर था।

गोकुल से निकले कृष्ण के मन की अवस्था के समान बिल्कुल मेरी अवस्था थी। सुख-दुख, विरह-वेदना ऐसी परिस्थितियों से तो भगवान भी नहीं बच सके। उनके मुकाबले मेरा अस्तित्व तो बिल्कुल नगण्य था।

मैं बार-बार अपने मन को समझा रहा था। अपर्णा और आस्था को वहां पर छोड़ कर आना मेरे लिए आसान नहीं था। उनको याद कर अकेलेपन की भावना में कई बार मेरी आँखें आँसुओं से भर जाती। इस विरह से मेरा मन भावुक हो उठता लेकिन कुछ समय बीतने पर यहीं मेरी आँसुओं से भरी आँखे ही मुझे जवाब और धैर्य देती थी।

सुख-दुख और कई बार अकेलेपन से टूटे मेरे मन में उनकी यादों का ही साथ था। इंसान को हर परिस्थिति में उसके आँसू ही साथ देते हैं। किस में डूबना है और किस में बेचैन रहना है, हमें खुद ही इसका निर्णय लेना पड़ता है।

मन के सकारात्मक और नकारात्मक विचारों से योग्य निर्णय लेना हमें आना ही चाहिए। हमारा परिवार हमारी कमजोरी नहीं, हमारी ताकत होना चाहिए। तब छिपाये हुए आँसू और मन में आये यादों के सैलाब से अपना काम करने की स्फूर्ति और प्रेरणा हमें मिलती है।

अमेरिका में आने के बाद मेरी आठ महीने की बेटी आस्था बाबा-बाबा करते समय कई बार मुझे वहां न पाकर रोई होगी? इतनी छोटी-सी बच्ची मुझे ढूँढने के लिए यहां-वहां घूमती होगी?

परंतु दूर देश में आया हुआ, उसका बाबा उससे मिलने के लिए बहुत उत्सुक होकर भी मिल नहीं सकता क्योंकि वह बेबस था। कहते है- **"दु:ख की**

लहरों को खुशी की झालर लगाने से दु:ख थोड़ा कम होता है।" यही सब मैं यहां कर रहा था। इसके अलावा और कर भी क्या सकता था?

अब मैं पूरी तरह पढ़ाई और शोधकार्य में व्यस्त हो गया। दिनरात काम में रहने लगा। इसलिए मेरे मन में उठते भावों को तथा अपने ही लोगों की यादों के लिए भी अब समय निकालना कठिन हो गया।

मुझे एक हफ्ते बाद खुशख़बर मिली। मुझे मिलने वाली फेलोशिप पूरी कर दी गई थी। मेरी ख़ुशी का ठिकाना नहीं रहा , तुरंत अपर्णा को फ़ोन लगाकर कहा, यदि तुम्हें भी पढ़ना हो और नौकरी करने की इच्छा हो तो तुम भी यहां आकर कोशिश कर सकती हो। उसने भी आगे पढ़ने की इच्छा जताई।

तुमसर से नागपुर अप-डाउन कर अब पढ़ाई करना उतना संभव नहीं हो पा रहा था। इसलिए अपर्णा माँ के साथ नागपूर में माधव मामा के घर किराये से रुम लेकर रहने लगी। माँ ने आस्था को बहुत ही लाड़-प्यार और जिम्मेदारी से संभाला जिससे अपर्णा को पढ़ाई पर ठीक से ध्यान दे पाना संभव हो पाया।

अमेरिका जाकर पढ़ना तो है लेकिन अब आस्था की देखरेख का सवाल उपस्तिथ हो गया था। न्यूयार्क जैसे महँगे शहर में फेलोशिप से मिलने वाले पैसे बहुत कम थे। इसमें दूर देश में छोटी बच्ची को सँभालना, अपर्णा और मेरी पढ़ाई तथा घर का खर्चा चलाना बहुत कठिन था।

एक साल बाद अपर्णा GRE पास कर,अपनी डिग्री पूरी करने के लिए अगस्त महीने में आस्था को माँ के पास छोड़कर अकेली ही अमेरिका आ गई। **"जिगर पर पत्थर रखना"** किसे कहते हैं अब हमें समझ में आने लगा। माँ बनकर अपनी पोती को सँभालने वाली मेरी माँ को त्रिवार नमन करता हूँ।

माँ ने बिल्कुल सहज रूप से एक-डेढ़ साल की छोटी-सी आस्था की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली। छोटे बच्चों को संभालना बहुत मुश्किल काम होता है। माँ ने आस्था की पूरी जिम्मेदारी स्वीकारी और उसे सँभालने लगी।

माता-पिता के रूप में अपनी बच्ची को वहां अकेला छोड़कर आना, जितना कठिन था। उतना ही माँ-बाबा के बिना रहना उस छोटी-सी बच्ची के लिए भी कई गुना कठिन रहा होगा। उसे ममता की छाँव में सँभालती उसकी दादी ही उसकी यशोदा माँ बन गई। भगवान श्रीकृष्ण और यशोदा का जो नाता है वही आस्था और माँ का था। हमें अब आगे के निर्णय लेने के लिए इतना ही विश्वास काफी था।

कहते हैं - **"दूध की अपेक्षा दूध के ऊपर जमने वाली मलाई का महत्व बहुत अधिक होता है।"** उसी तरह माँ ने आस्था को सँभाला। माँ ने आस्था को बड़े ही लाड़-प्यार से पालते हुए बहुत ही सर पर बिठा रखा था। फ़ोन पर अक्सर आस्था से बात हो जाती थी।

उन दो-तीन सालों में घर के सभी सदस्यों ने हमें बहुत सहयोग दिया। उनके सहयोग से ही हम अपने निर्णयों पर डटकर खड़े रहे और अपना लक्ष्य प्राप्त कर सके। कुछ पाने के लिए कुछ खोना तो पड़ता ही है।

मेरी पीएच.डी. और अपर्णा की डिग्री पूरी हो गई। दो वर्ष बाद हम भारत में आए। अपनी बेटी को देखकर आँसू रुक नहीं रहे थे। यह सब देख माँ और घर के सभी सदस्य बहुत भावुक हो उठे । माँ के उपकार कैसे चुकाऊंगा, कुछ सोचने की शक्ति ही नहीं थी। कुछ दिन सबके साथ बिताकर अब आस्था को लेकर हम अमेरिका वापस आ गए। उसके बचपन की बहुत ही सुंदर यादों और सुंदर बाल-लीलाओं को हम दोनों ने ही बहुत याद किया। भागते-भागते उसका गिरना, गिरकर उठना, उसका हँसना-खेलना यह सब हम उस समय अनुभव नहीं कर सके थे।

दो-ढ़ाई वर्ष के पश्चात उसका यह बचपन देखकर हमारा मन भर आया। मन की भावना शब्दों में व्यक्त करना असंभव है, शायद इतना ही कहूँगा उस समय हमारे संघर्ष का अहम हिस्सा आस्था भी थी। उसके बिना हमारा संघर्ष अधूरा था। सात समंदर पार दूर देश में मेरे पास अब मेरा पूरा परिवार साथ रहनेवाला था।

माता-पिता को कई बार बहुत कठिन निर्णय लेने पड़ते हैं। कई बार निर्दयी माँ-बाप कहकर उन्हें मुजरिमों के कटघरे में खड़ा कर दिया जाता है। इसका अर्थ माता-पिता बहुत कठोर हो ऐसा नहीं होता। कभी-कभी भावुक दृष्टि से विचार करना सही नहीं होता।

माँ की ममता, प्रेम, अपनापन जरुरी है लेकिन उसके साथ बच्चों को अनुशासन में लाने के लिए उन्हें डांटना भी पड़ता है। माँ-बाप की जगह इस दुनिया में कोई नहीं ले सकता। उनका प्रेम माँ-बाप हुए बगैर कोई समझ भी नहीं सकता यह उतना ही शत-प्रतिशत सच है।

अमेरिका के अनुभव

अमेरिका में आने पर मेरे लिए यहां सब कुछ नया था। बहुत तकलीफ होगी, इसका अंदाजा पहले से ही था। अमेरिका में बोली जाने वाली अंग्रेजी भाषा का भी पूर्वानुमान लगा लिया था। शुरुआती दिनों में कॉलेज में प्रोफ़ेसर क्या बातें करते हैं, उनके उच्चारण से कुछ पता ही नहीं चलता था। मेरे साथ पढ़ने वाले आठ-दस दोस्त मिलकर हम कैंटीन में बैठे हुए थे। उनके साथ बातें करते समय पता चला कि, सभी पढ़ाई के लिए एशिया, बांग्लादेश, कोलंबो, बुल्गारिया, फिलिपिंस, रशिया, हंगेरी तुर्की, पोर्टोरिगो अलग-अलग देशों से आए, सभी मेरे समान हैं। मैं जिन मुश्किल परिस्थितियों का सामना कर रहा था, उनका भी वही हाल था।

कुछ ही दिनों में सभी से मेरी अच्छी-खासी दोस्ती हो गई। अब मन से डर निकलने लगा। एक-दो हफ्ते लगे होंगे। धीरे-धीरे मुझे भाषा भी समझ में आने लगी। मैंने उनके बोलने का तरीका जल्दी ही आत्मसात कर लिया।

दरअसल, अमेरिका के न्यूयॉर्क शहर में अधिकांश मात्रा में भारतीय लोग ही रहते हैं। न्यूयॉर्क शहर को Gateways of Immigrant कहा जाए तो कुछ गलत नहीं होगा? यहां स्थित अधिकतर भारतीय लोग न्यूयॉर्क शहर के स्थायी निवासी बन चुके हैं। शुरुआत में मैं रुम शेयर कर के रहता था। मेरे साथ रहने वाले सभी भारतीय थे।

मैं कॉलेज में एक घंटे में पहुँच सकूँ इतनी दूर स्थित Jackson Height नाम के परिसर के एक अपार्टमेंट में, छोटी सी रुम किराये से लेकर रहने लगा। न्यूयॉर्क की लोकल ट्रेन से हर दिन कॉलेज आने-जाने में मजा आने लगा। ट्रेन में विभिन्न देशो के लोग दिखाई देते थे। मैं कई लोगो से सफ़र के दौरान बाते करने लग जाता। कॉलेज में जाते समय दो ट्रेन बदलनी पड़ती थी। एक ट्रेन से (प्रसिद्ध)

Times Square Station तक जाकर वहां से दूसरी ट्रेन पकड़कर कॉलेज जाना पड़ता था।

अपर्णा जब अमेरिका आयी तब मुझे रहने के लिए दूसरा घर ढूँढना पड़ा। कॉलेज से थोड़ी दूर स्थित एक अपार्टमेंट में मैंने किराए से फ्लैट ले लिया। बेसमेंट में दो फैमिली, फर्स्ट फ्लोर पर हमारे मकान मालिक और सेकंड फ्लोर पर हम, साथ ही एक और फैमिली रहती थीं। हमारे मकान मालिक बांग्लादेशी थे। जो बहुत सालों से न्यूयॉर्क में रहते थे। हमारे साथ रहने वाले सभी लोग अलग-अलग देशों से आए हुए थे जिनसे बहुत ही जल्दी हम सभी की अच्छी जान-पहचान हो गई।

अमेरिका में प्रेग्नेंट महिलाओं को बेसमेंट में रहने की अनुमति नहीं रहती। यदि ऐसा पाया जाता है, तो जुर्माना मकान मालिक को भरना पड़ता है। बेसमेंट में रह रही फैमिली में एक महिला प्रेग्नेंट होने के कारण उसे बेसमेंट का घर छोड़ना जरुरी हो गया था। नया मेहमान घर में आ रहा है। इसकी खुशी तो बहुत थी, परंतु अब नया घर ढूँढना पड़ेगा इसका उन्हें दुःख भी था।

मैंने और अपर्णा ने मिलकर एक निर्णय लिया। वे हमारे घर और हम उनके बेसमेंट के घर में शिफ्ट हो गए। इस बात का उन्हें बहुत ही आश्चर्य हुआ। उस समय हमने उन्हें जो एक छोटी-सी मदद की, उनके घर बदलने की परेशानी को कम किया। उस समय दी गई एक छोटी-सी मदद आज तक उनके और हमारे बीच के मधुर संबंधों को एक मजबूत धागे से जोड़े हुए हैं। मुस्कराहट का कोई मोल नहीं और रिश्तों का कोई तोल नहीं होता।

मुझे मिल रहे स्कॉलरशिप के पैसों पर हम दोनों का पढ़ाई का खर्चा और घर चलाना मुश्किल होने लगा। जिसके कारण अपर्णा ने एक ब्यूटी पार्लर में काम करना शुरू कर दिया।

मैंने अपनी पीएच.डी. दो साल नौं महीने में पूरी की। इतने कम समय में पीएच.डी. पूरी करने वाला मैं हमारे डिपार्टमेंट में शायद अकेला ही विद्यार्थी था। जो सपने देखने की हिम्मत करते है वही दुनिया को जीत सकते हैं। मैं कुछ ऐसा ही महसूस कर रहा था।

उसके बाद मेरा पोस्ट डॉक्टरेट के लिए नंबर लगा। (funded by NOAA) अब हमें न्यूयॉर्क से कोलोराडो में शिफ्ट होना था। इसी दौरान अपर्णा की मास्टर्स (MS) डिग्री पूरी हो गई। पीएच.डी. पूरी होने के पहले ही (Colorado

State University) कोलोरेडो स्टेट यूनिवर्सिटी से पोस्ट डॉक्टरेट जॉब की ऑफर आ गई। मैंने वह नौकरी स्वीकार कर ली, परंतु वहां पर जाने से पहले भारत जाकर अपनी नन्ही बच्ची आस्था को, अपने साथ अमेरिका में लाने का निश्चय किया। हम दो-ढाई वर्ष पश्चात भारत आए और आस्था को साथ लेकर, अमेरिका वापस चले गए ।

अमेरिका और भारत की शिक्षा प्रणाली में वैसे बहुत अंतर देखने को मिलता है। अमेरिका में प्रोजेक्ट असाइनमेंट पर शिक्षा पद्धति आधारित होती है। वहां पर इसे अधिक महत्व दिया जाता है। हर हफ्ते में उन्हें पढ़ाई के हिसाब से प्रोजेक्ट असाइनमेंट देने ही पड़ते हैं। जिसके कारण उन्हें निरंतर इसी कार्य में व्यस्त रहना पड़ता है। वहां रट्टामार पढ़ाई को बिल्कुल महत्व नहीं दिया जाता। इसलिए पढ़ाई की जो नई-नई संकल्पनाए है, वहां अधिक स्पष्ट रूप से समझ में आती हैं।

कोलोरेडो स्टेट यूनिवर्सिटी के अपार्टमेंट में हम शिफ्ट हो गए। इस छोटे से टाउन में हमने बहुत सारे दोस्त बनाए। यहां पर मैंने कार चलाना भी सीखा और अपने जीवन की पहली कार खरीदी। तेलूगु, कन्नड़ ऐसे अनेक भारतीय मित्रों से मेरी दोस्ती हो गई। अपर्णा H4 विजा पर अमेरिका में आई थी, इसलिए अमेरिका में नौकरी नहीं कर सकती थी। आस्था के साथ अब उसे बहुत अधिक समय मिलने लगा। दो वर्ष कैसे बीत गए पता ही नहीं चला।

दो सालो में, बहुत ही जल्दी पोस्ट डॉक्टरेट के बाद न्यूयॉर्क में, मैंने जहाँ से पीएच.डी. पूरी की, उसी कॉलेज में मुझे, रिसर्च साइंटिस्ट के पद पर नौकरी मिल गई। इतना सुनहरा अवसर हमारे जीवन में पाकर, हम बहुत खुश हुए। उसके बाद हम फिर न्यूयॉर्क में शिफ्ट हो गए।

न्यूयॉर्क से लगकर न्यू जर्सी स्टेट के एडिसन शहर के पास, दो बेडरूम हॉल किचन के अपार्टमेंट को मैंने खरीद लिया। यह मेरा खुद का पहला घर था। यहां करीब-करीब 632 अपार्टमेंट थे जिनमे 30% समुदाय भारतीय ही था। मेरा हितचिंतक, बहुत बड़ा मित्रपरिवार मुझे यहां पर मिला। आपको यह जानकर अजिब महसूस होगा परंतु यहां पर सिर्फ भारतीय और अन्य देशों से आए हुए लोगों के घर ही बच्चे थे। अमेरिका के जो निवासी थे, उनके घर बच्चे नहीं थे। अपार्टमेंट के आसपास के परिसर में, बहुत ही सुंदर और बड़ा लॉन था। परंतु बच्चों को खेलने की अनुमति यहां नहीं थी। जिसके कारण, यदि कोई खेलता, तो उसे जुर्माना भरना पड़ता। मुझे बहुत बुरा लगा और मैंने आगे आकर एक ग्रुप

तैयार किया। Margate सोसाइटी में बोर्ड इलेक्शन लड़ा और उसमें मैं जीत भी गया। अब मैं इस सोसायटी के बोर्ड का प्रेसिडेंट बन गया हूँ।

कोई त्यौहार हो या कार्यक्रम, हम सब एक साथ जश्न मनाने लगे। यहां पर हम गणेश चतुर्थी, दशहरे में रावण जलाना, रामलीला, दिवाली और होली जैसे सभी कार्यक्रम धूमधाम और बड़े उत्साह से मनाते हैं। मैं जिस शहर में रहता हूँ, वहां पर दिवाली के दिन स्कूल में छुट्टी होती है।

ग्रीन कार्ड होने पर भी मैं मन से भारतीय हूँ। हम जो भी वस्तुएँ तीस-चालीस साल पहले इस्तेमाल करते थे। वह वस्तुएँ आज भी यहां मॉल में उपलब्ध होती है। मैंने बचपन में जिसका उपयोग किया था, वह लाइफबॉय साबुन भी यहां सहज उपलब्ध हैं। मुझे लगता है, बहुत सारे भारतीय लोग उनके बचपन में उपयोग में लायी हुई वस्तुओं को उनकी याद में आज भी इस्तेमाल करते है।

हमने कुछ निधि जमा कर बच्चें जी भर खेल सके, उतना प्ले-ग्राउंड तैयार किया। Margate सोसायटी का प्रेसिडेंट होने के कारण मुझे सोसाइटी में सभी लोग पहचानने लग गए। हमारे सोसायटी को दिया हुआ यह बहुत ही सुंदर तोहफ़ा, मैं अपने नेतृत्व में दे सका इसपर मुझे बहुत गर्व महसूस होता है।

बचपन से ही आगे बढ़ कर कार्य करने की आदत होने से कितना फायदा होता है। इसका मुझे आज एहसास होता है। उम्मीद एक ऐसी उर्जा है जिससे जिंदगी का कोई भी अँधेरा हिस्सा रोशन किया जा सकता हैं।

जीतू की अमेरिका में अच्छी नौकरी थी। अमेरिका में स्थायी होना चाहिए या नहीं इस पर हमने बहुत गहराई से विचार करना शुरु किया। इस विषय पर हम बहुत चर्चा करने लगे। जीतू को कंप्यूटर फील्ड में एक अच्छी नौकरी बंगलुरु में लग गई। उसने भारत आकर बंगलुरु में एक साल तक वह नौकरी की। उसके लिए वह बहुत अच्छा और लाभदायक अनुभव था।

बंगलुरु में नौकरी के बाद जीतू अमेरिका आया। उसके बाद हमने तय किया कि हमें अमेरिका में ही रहना है। सिर्फ अंतर का ही तो सवाल था। हमारे लिए अमेरिका जितना ही बंगलुरु भी अनजान था। आने-जाने का समय भी समान ही था। हमारे बच्चों की पढ़ाई की दृष्टि से भी थोड़ा विचार किया और अमेरिका में स्थायी होने का निर्णय लिया। माँ-बाबूजी ने बड़े मन से इसे स्वीकार किया।

अमेरिका में शोधकार्य

गर्मियों में हिमालय का बर्फ पिघल कर उसका 40% पानी गंगा नदी में आकर मिलता है। इसलिए हिमालय या अमेरिका में पर्वत शृंखला पर कितना बर्फ है? यह हमारे शोध का महत्वपूर्ण विषय है।

यूनिवर्सिटी में कई जगहों से रिसर्च फंडिंग प्राप्त कर एक वैश्विक स्तर पर "Snow Research Campaign", की स्थापना की। जो न्यूयॉर्क से एक हजार किलोमीटर दूर स्थित केनेडा के बॉर्डर से लगकर आर्कटिक या ध्रुवीय प्रदेश के नजदीक था।

कोई भी नया उपग्रह सेंसर लॉन्च करने से पहले वह जमीन पर टेस्ट करना पड़ता है। जो इंस्ट्रूमेंट्स उपग्रह सैटेलाइट उपयोग में लाते हैं, वही अलग-अलग फ्रीक्वेंसी के इंस्ट्रूमेंट्स यहां उपयोग में लाए गए थे। (Snow) स्नो फील्ड की पढ़ाई के लिए चार पीएच.डी. स्टूडेंट्स, तीन मास्टर स्टूडेंट्स और कई बैचलर डिग्री के विद्यार्थियों ने इस पर शोधकार्य कर डिग्री प्राप्त की और नासा जैसे स्थान पर नौकरी करने लगे। पृथ्वी पर बर्फ के पानी का सटीक अंदाज़ा लगाने में इस शोधकार्य की बहुत अहम भूमिका हैं।

पॉलिटेक्निक में पढ़ते समय ऑटोमेटिक ब्रिज और एसजीजीएस (SGGS) से इंजीनियरिंग करते समय डैम ब्रीज का मॉडल (structure) जैसे कठिन प्रोजेक्ट को संभालने की आदत हो गई थी, जो आज भी बनी हुई है।

हमें snow फील्ड साइट स्थापित करना था। नासा की ओर से थोड़ी फंडिंग प्राप्त करने में हम सफल हुए। सेटेलाइट द्वारा जमीन के पानी का स्तर पता करना, नये रिसर्च तथा नए प्रोजेक्ट के लिए नई जगह डेढ़-सौ किलोमीटर दूर छोटे से गांव में इकोसिस्टम रिसर्च कर रहे सेंटर के नजदीक इसे स्थापित किया है।

उसमें Microwave Frequency के रेडियोमीटर (RADAR) के साथ उसी क्षेत्र में छह स्थायी और सोलह अस्थायी स्टेशन स्थापित किए। उसमें कई

विभागों की मदद ली गई। रिसर्च करते समय मैं यूनिवर्सिटी में पढ़ाने का काम भी करता। मेरे पढ़ाने के सभी विषय पृथ्वी और उपग्रह से संबंधित थे। सेटेलाइट रिमोट सेंसिंग GIS मैपिंग, पृथ्वी और पर्यावरण, विज्ञान आदि... ऐसे कई उदाहरण देख सकते हैं।

इसी दौरान टीचर्स ट्रेनिंग प्रोग्राम के अंतर्गत न्युयोर्क शहर के शिक्षकों को दो साल तक पढ़ाने का अनुभव मुझे मिला। स्कूलों को वातावरण इस विषय पर नया पाठ्यक्रम तैयार करना था। मैंने सोचा मौसम स्टेशन (Weather station) की स्थापना यदि स्कूल में ही की गई तो, विद्यार्थियों को पढ़ाना बहुत आसान हो जाएगा। साथ ही हम (climate) वातावरण के डेटा पर भी थोड़ा काम कर पाएँगे।

मैंने तुरंत आगे बढकर मेरे डायरेक्टर की ओर से CUNY कुलगुरू से एक लाख डॉलर की फंडिंग लेकर न्यूयॉर्क शहर के कई स्कूलों में वातावरण मौसम स्टेशन की स्थापना की। इस उपक्रम के कारण मैं स्कूल के शिक्षक और विद्यार्थियों के साथ योग्य रुप से संपर्क स्थापित कर सका।

एक वैज्ञानिक के नाते यह बताते हुए मुझे बहुत गर्व महसूस होता है कि कई स्कूलों में मौसम स्टेशन की स्थापना कर उन्हें (climate और weather) वातावरण या मौसम की पढ़ाई में कैसे उपयोग करना है। इसकी ट्रेनिंग स्कूल के शिक्षकों और विद्यार्थियों को देने में सफल रहा हूँ। सौ में से तीन विद्यार्थी भी यदि मुझसे प्रेरणा लेकर वैज्ञानिक बन जाए तो मेरा कार्य सफल हुआ ऐसा मैं समझूंगा।

अमेरिका में आज भी नेटिव्ह अमेरिकन है जो दूर-दराज में रहते हैं। परिस्थिति से गरीब, उनका रहन-सहन का स्तर कम होने के कारण उन लोगों तक अमेरिका की सुख-सुविधाएँ उतनी नहीं पहुँच पाती। मेरी स्नो रिसर्च साइट (snow research site) जो कनाडा के बॉर्डर के पास स्थित है। वहां कई मूल अमेरिकन, सरल भाषा में यदि बताया जाए तो हमारे यहां के आदिवासी लोग इनके बीच संपर्क स्थापित कर मैं इन्हें पढ़ाने तथा मेरी ओर से हर संभव मदद देने का प्रयास करता हूँ। मैं एक प्रोफेसर के तौर पर कार्य कर उनकी समस्याओं को समझने की कोशिश में लगा रहता हूँ। मैंने जो पढ़ाई की है उसका फायदा केवल मुझे ही नहीं तो अन्य लोगों को भी उसका लाभ मिले इस उद्देश्य को साध्य होता देख मैं बहुत ख़ुशी महसूस करता हूँ।

ऊपर बताए गए रिसर्च के अतिरिक्त नेपाल, बांग्लादेश, पाकिस्तान, अर्जेंटीना और अन्य देशों में भी रिसर्च कोलैबोरेशन स्थापित कर उपग्रह, वातावरण और वातावरण में बदलाव के कारण लोग, खेती और जानवरों पर होने वाले इसके परिणाम इस विषय पर मैं काम कर रहा हूँ।

पिछले पंद्रह सालों में मेरा यह योगदान देखकर 2022 इस साल में मुझे यूनिवर्सिटी की ओर से **प्रेसिडेंट S.T.A.R. Award** अवार्ड दिया गया। President's S.T.A.R. Award for Service, Teamwork, Action, Results इत्यादि कार्यों की ओर ध्यान देकर प्रदान किया जाता है।

The award goes to Tarendra.... प्रेसिडेंट से अवार्ड मिलने के बाद मैंने अपने दोस्त के कान में कहा - Tare..... The stars... मेरा नाम सार्थक होने की भावना मेरे मन में निर्माण हुई। मुंडीकोटा इस छोटे से गांव से आया – "**तारों का राजा- तारेंद्र**" को आज यहां सात समंदर पार अमेरिका जैसे बड़े देश में इस अवार्ड से सम्मानित किया गया। कहते है ना - "**मंजिल उन्हीं को मिलती हैं जिनके सपनों में जान होती है, पंखों से कुछ नहीं होता हौंसलों से उड़ान होती हैं।**" आज मैंने वही उड़ान भरी हो ऐसा मुझे महसूस हो रहा था।

मातृभूमि को समर्पित हमारी देन

कई लोग हम से पूछते हैं? तुम अमेरिका में पढ़ने क्या गए और वही के हो गए ! परंतु ऐसा नहीं है। मैं आज भी तन- मन- धन से भारतीय हूँ।

एक बार जब हम सभी दोस्त मिले। सभी ने मुझसे एक ही प्रश्न किया। भारत देश पर तुम लोगों का प्रेम नहीं है क्या? अपना भारत छोड़कर बाहर देश में रहने लगे हो। इतने पढ़े-लिखे हो तो भारत में आकर भारत की उन्नति में हाथ क्यों नहीं बंटाते हो? इस तरह के व्यंग-बाण कसकर मुझे चिढ़ाने की कोशिश की।...

मैंने सब शांत रहकर सुना। सभी का बोलना पूरा होने के बाद मैंने उन्हें कहा, सिर्फ एक बात बताओ? तुम जिस स्कूल या कॉलेज से पढ़े हो, वहां अपने जीवन में तुम फिर कभी गए हो क्या? सभी ने गर्दन हिलाकर ना में उत्तर दिया। अपने स्कूल और कॉलेज के प्रति जो मेरी जिम्मेदारियाँ है, उसे मैं भूला नहीं हूँ। यह मुझे उन्हें बताने की जरुरत ही नहीं पड़ी।

मैं भारत के जिस स्कूल और कॉलेज में पढ़कर तैयार हुआ, उनके लिए कुछ करना चाहिए, ऐसा मुझे हमेशा लगता है। उसके बाद जब-कभी मैं भारत में आया तब अपने स्कूल अवश्य जाने लगा।

मैंने तुमसर के राष्ट्रीय विद्यालय में दानस्वरूप आर्थिक मदद दी। ग्रंथालय को पुस्तकें प्रदान की। स्कूल की कक्षाओं में पंखे लगाना, टूटी-फूटी खिड़कियों की मरम्मत जैसे कामों के लिए आर्थिक सहायता दी। बच्चों के खेलने के लिए वॉलीबॉल कोर्ट बनवाए।

एक पूर्व विद्यार्थी के रूप में मैंने अपनी ओर से पूरा सहयोग देने का प्रयास किया है। मैं नांदेड के मेरे इंजीनियरिंग कॉलेज में कई बार जाकर मिल आता हूँ। किसी समय एक प्रोफेसर अमेरिका में आए थे उन्हें मैंने जो भी मुझसे बना, मदद देने की कोशिश की। नांदेड के कॉलेज के विद्यार्थियों को मार्गदर्शन करने के लिए मैंने अपने दो अमेरिकन प्रोफेसर दोस्तों को प्रशिक्षण देने के लिए भेजा था।

पीएच.डी. कर रहे एक बहुत ही मेहनती आदित्य नीलावार नाम के विद्यार्थी को अमेरिका में बुलाकर उसे ट्रेनिंग दी। कालांतर में उसे नांदेड के कॉलेज में ही प्रोफेसर के पद पर नौकरी भी मिली।

नेपाल में बहुत ही दुर्गम क्षेत्र में तीन-चार छोटे गांव पर हम रिसर्च कर रहे थे। गांव में हमारा एक छोटा-सा यूनिट भी था। वहां की खेती, जमीन और वातावरण यह हमारे शोधकार्य का विषय था।

2015 में नेपाल में भूकंप आया जिसमें ये दो-तीन गांव पूरी तरह बर्बाद हो गए थे। पंद्रह दिन बीत गए, फिर भी इन तीन-चार गांवों में सरकार की कोई मदद नहीं पहुँची थी जब हमें यह पता चला तब मैंने उस छोटे से गांव के लोगों को मदद करने का निर्णय लिया।

अमेरिका में स्थित मेरे दोस्त, ऑफिस के साथियों से मदद माँगने का निर्णय लिया। हमारे पास दो दिन के अंदर सात से आठ लाख रुपये जमा हो गए। खाने-पीने की वस्तुएँ, पानी, कपड़े दवाइयां कानपुर से खरीद कर एक ट्रक में भरकर लाए, हमारे डिपार्टमेंट के हेड और तीन चार विद्यार्थियों ने मोटर साइकिल से उन गांवों तक मदद पहुँचाई।

इस मदद की पोस्ट मैंने मीडिया पर शेयर की। मुझ पर विश्वास रखकर चार दिन के अंदर गांव की मदद के लिए बीस लाख की रकम जमा करने में मैं सफल रहा।

हमारी यूनिवर्सिटी को जब इस बारे में पता चला। तब उन्होंने मुझ पर एक आर्टिकल प्रकाशित किया। तमिलनाडू में आया तूफान हो या अभी हाल ही में दो ढाई साल पूर्व कोल्हापुर और सांगली की बाढ़, पुना में रहने वाले मेरे दोस्त अमित पाटील की मदद लेकर मैं सांगली तक सहायता पहुँचाने में सफल हुआ। तमिलनाडू के समय TCS कंपनी के मेरे दोस्त के दोस्तों से समन्वय साध कर सहायता पहुंचाई।

किसी एजेंसी को माध्यम बनाकर मदद पहुँचाने की अपेक्षा मैं अपने नेतृत्व में जिसे आवश्यकता हो ऐसे लोगों को मदद मिले, उन तक आवश्यक चीज़े पहुँचाने की मेरी कोशिश रहती है। थोड़ा निरीक्षण-परीक्षण और अभ्यासपूर्वक नियोजन से यदि परिस्थिति को सँभाला जाए तो, दूर देश में रहकर भी मैं यह सब कर सकता हूँ, इसका मुझे गर्व है। इसके लिए मेरे प्रियजनों ने मेरी हमेशा मदद

की है। वे आज भी मेरी एक पुकार पर मदद के लिए आगे आने के लिए तैयार रहते हैं।

साल 2022 में CUNY CREST इंस्टीट्यूट द्वारा इंडिया इनीशिएटिव कोलैबोरेशन (IICCCI) की नियुक्ति की गई। IICCCI भारत-यूएस में वातावरण का अंदाजा लगाना, पानी, अनाज की सुरक्षा और वातावरण आदि चीजों को अच्छी तरह समझकर विद्यार्थियों और व्यापारियों को अपने करियर की शुरुआत में क्रॉस-डिसीप्लिनरी और क्रॉस-सांस्कृतिक शिक्षा का वातावरण प्रदान करेगा।

उसी दौरान भारत से अमेरिका में आए चार यूनिवर्सिटी के कुलगुरु और अमेरिकन रिसर्च और अधिकारियों के साथ चर्चा कर (सामायिक स्वारस्य) विधान पर हस्ताक्षर किए गए।

उसके बाद भारत में अमेरिका के प्रतिनिधि के साथ आकर महाराष्ट्र के गवर्नर श्री भगत सिंह कोश्यारी के समक्ष इस डॉक्यूमेंट पर हस्ताक्षर किए गए।

इसी दौरान अमेरिका के डेलिगेट के साथ भारत के महाराष्ट्र, ओडीसा, आंध्र प्रदेश और तेलंगाना स्थित अलग-अलग यूनिवर्सिटी में जाकर "वातावरण में बदलाव" इस विषय पर परिषद या सम्मेलन आदि लेकर प्राध्यापक, संशोधक और विद्यार्थियों को मार्गदर्शन किया। यह कार्य बड़े स्तर पर आगे ले जाने हेतु मैं प्रयासरत हूँ। जल्द ही महाराष्ट्र में वैश्विक स्तर की एक बड़ी परिषद लेने की हमारी कोशिश जारी है।

मैं नेपाल 2017 में कॉन्फ्रेंस के लिए जब गया था वहां मैंने सभी अमेरिकन टीम को नांदेड के कॉलेज में आने का न्यौता दिया। उस साल वैश्विक स्तर की कॉन्फ्रेंस नांदेड़ में आयोजित की गई। जहाँ मुख्य रूप से कुलगुरु भी उस समय उपस्थित थे। मैं आज छह महीने से ऑनलाइन zoom के माध्यम से कॉलेज के विद्यार्थियों को उच्च शिक्षा के मार्ग और करियर के संबंध में मार्गदर्शन देता हूँ। नांदेड जैसे छोटे शहर में इंजीनियरिंग कॉलेज के लिए यह उपक्रम उनकी दृष्टि से बहुत ही गरिमामय था।

एक बार एक प्रोफ़ेसर ने पूछा? कई विद्यार्थी यहां से पढ़कर गए लेकिन कोई पीछे मुड़ कर भी नहीं देखता? परंतु तुम याद से कॉलेज में आते हो। अमेरिका में रहकर भी अपने कर्तव्यों को पूरा करते रहते हो। नई-नई योजनाएं बनाते रहते हो।

उस समय कुछ पुरानी यादें ताज़ा हो गई। कॉलेज में मैं कैसे होस्टेल में छिपकर रहता? पैसे बचे इसलिए नियम तोड़ता परंतु उस समय के मेरे जो यह अनुभव थे, उसे मैं आज वापस नहीं कर सकता। मैं आज जो भी मदद करता हूँ, इसमे अपना बड़प्पन नहीं अपितु मेरा कर्तव्य समझता हूँ।

एक बार यदि विदेश में विद्यार्थी चले गए, तो फिर कभी पीछे मुड़कर भी नहीं देखते। यह सर्व सामान्य वाक्य को मैंने मिटाने की कोशिश की और आज भी कर रहा हूँ। जब कभी लोगों को मेरी आवश्यकता हो, मैं अपने व्यस्त दिनक्रम से समय निकालकर अपने स्वदेश में आने की कोशिश करता हूँ।

तारे - द - ग्रेट

मुझे बचपन से ही पुस्तके पढ़ना बहुत अच्छा लगता है। भारतीय स्वतंत्रता के इतिहास में घटित घटनाओं को पढ़ना, ऐतिहासिक लड़ाइयों के विषय में जानना, छत्रपति शिवाजी महाराज के स्वराज्य स्थापना का इतिहास, साथ ही रोचक कहानियाँ पढ़ना मुझे बेहद पसंद है।

मैं जैसे-जैसे बड़ा होता गया, हिंदी के प्रसिद्ध लेखक श्री वेद प्रकाश शर्माजी के उपन्यास पढ़ने लगा। सही बताऊं तो उनके उपन्यास के "विकास - द ग्रेट और विजय - द ग्रेट" व्यक्ति रेखाओं को मैंने अपने जीवन में करीब से जाना और अपनाया। मैं अपने आप को तारे-द-ग्रेट समझने लगा। इंजीनियरिंग में पहुँचने तक मैं किसी भी प्रमाणपत्र पर "तारे-द-ग्रेट" नाम से ही हस्ताक्षर करता था।

दुबला-पतला, बोलते समय लड़खड़ाता, गरीब परिस्थिति और आत्मविश्वास की कमी की वजह से बोलने में हिचकिचाहट महसूस करता, इससे उबरने की प्रेरणा मिले इस उद्देश्य से मैंने खुद को तारे-द-ग्रेट कहना शुरू कर दिया, जिससे मेरा आत्मविश्वास बढ़ने लगा। मैंने अपनी कार के लिए "तारे-द-ग्रेट" नाम की विशेष तख्ती बनवाई है।

कोई भी व्यक्ति परिपूर्ण नहीं होता। जिस प्रकार कांटों में गुलाब और कीचड़ में कमल खिलता है, गुलाब और कमल पर आसपास के वातावरण का कोई प्रभाव नहीं पड़ता, वह अपना विकास कर योग्य दिशा में आगे बढ़ता है। हम ही अपने अंदर कुछ नकारात्मकता बिठा लेते हैं। परिस्थिति चाहे कैसी भी आए अपना स्वतंत्र अस्तित्व निर्माण करने की ज़िद हमारे अंदर होनी चाहिए।

भाग्य के भरोसे रहने की अपेक्षा अपने कर्तृत्व का झंडा अपने बल पर फहराने की यदि कोशिश की जाए तो, हम स्वयं ही अपनी नजरों में उठने लगते हैं। सभी में कुछ न कुछ कमियाँ तो होती ही है, लेकिन जब वो कमियां हावी होने लगे तो हमें अपनी अच्छाइयां नजर ही नहीं आती। जीवन में बुरे दिन तो आयेंगे

ही, लेकिन अपने आप पर भरोसा होना चाहिए। आहवान हमारे सामने हो लेकिन प्रेरणा देने वालों से अधिक पीछे खींचने वालों की भीड़ हो, ऐसे समय हमारे सपने मजबूत हो तो, हमें सफलता की ऊँची उड़ान भरने से कोई नहीं रोक सकता। **"ब्रह्मांड की समस्त शक्तियाँ तभी आपके साथ होती हैं जब मन, हृदय और वचन से आप साफ़ रहते हैं।"**

आज मैं एक छोटे से गांव से आकर अमेरिका में प्रोफेसर के पद पर कार्यरत हूँ। मैं स्वयं को परिपूर्ण नहीं समझता, इंसान को हमेशा एक विद्यार्थी बनकर ही रहना चाहिए तभी वह सीख सकता है और उसे सीखने के असिमित अवसर उपलब्ध होने लगते हैं। छोटे-बड़े आज सभी से सीखना अच्छा लगता है। इससे मैं छोटा हो जाऊँगा ऐसा मुझे कभी नहीं लगता। आज हर किसी को परिपूर्ण बनना है। हर कोई ऑलराउंडर बनने की होड़ में आगे बढ़ रहा है, सफलता की ऊंची से ऊंची सीढ़ियां उसे प्राप्त करनी है। ऊंचे लक्ष्य की अपेक्षा से बड़े-बड़े सपने पूरे करने की होड़ में दिखते हैं। जिसके लिए वे बड़े-बड़े आहवानों को स्वीकार करते हैं। लेकिन उसमें हम हर आहवानों पर सफल उतरेंगे ही यह जरूरी नहीं होता। सफ़लता पाने के लिए आत्मविश्वास जरुरी हैं और आत्मविश्वास के लिए तैयारी, आत्मविश्वास सफ़लता की कुंजी है।

हमें यदि सफलता मिलती है तो उसका नशा सर पर चढ़ने नहीं देना चाहिए और असफलता में खुद को संभालना आना चाहिए। अपने आप को तटस्थता की भूमिका में रखना और समस्त परिस्थितियों पर योग्य रूप से विचार करना जरूरी होता है। आपको अपना विश्वास डगमगाएं बिना परिस्थिति पर मात करना आना चाहिए। मेरे पास क्या नहीं है इसकी अपेक्षा मेरे पास क्या है, ऐसा विचार करने वाले व्यक्ति सुखी और समाधानी, साथ ही सकारात्मक दिखाई देते है।

कभी-कभी लोग बेहतर की तलाश में बेहतरीन को खो देते हैं। जो हमारे पास नहीं है उसके लिए कोशिश करने में कुछ गलत नहीं है परंतु उसकी भी सीमा होनी चाहिए अन्यथा हाथ से कहीं दोनों ही न निकल जाए। हम कौन हैं? हमारी पहचान क्या है? सच्चाई अगर देखें तो हमें स्वयं ही अपनी पहचान निर्माण करनी पड़ती है और अपने काम के प्रति निष्ठा हमारी सच्ची पहचान है। हर बात को देखने के दो नजरिए होते हैं, मैं सकारात्मक दृष्टिकोण से ही देखने लगा।

कभी-कभी हमारा आत्मविश्वास अपने आप पर कितना ही अटूट क्यों न हो लेकिन समय पर आने वाली समस्याओं का सामना करने के लिए बिना घबराए उस पर मार्ग निकालना ही पड़ता है। अगर आप अपने जीवन में कुछ नहीं

कर पा रहे हैं तो एक काम अवश्य कीजिए, वो है प्रयास.... जीवन की कठिनाइयों भरे रास्ते से गुजर कर तो देखिये, क्या पता किस मोड़ पर आपको कामयाबी मिल जाए।

आत्मविश्वास अर्थात क्या? हम स्वयं ही अपने आसपास एक सकारात्मकता का वलय निर्माण करते हैं। घर में मराठी भाषा के वातावरण में पला-बढ़ा, अंग्रेजी से दूर-दूर तक मेरा कोई वास्ता नहीं था।

उच्च शिक्षा लेते समय कान्वेंट में जो विद्यार्थी पढ़ते, उनकी बोली और मेरी अंग्रेजी की बोली में जमीन आसमान का अंतर मुझे दिखाई देता। कहते हैं - "हमें खुद ही अपना आलोचक बनना चाहिए।" जब मुझे अपने और उनमें फर्क नजर आता था तब मैं कहाँ कम पड़ रहा हूँ, इस ओर ध्यान देने लगा। अपनी गलतियों पर कभी पर्दा नहीं डाला बल्कि हमेशा उन गलतियों को ठीक करने का प्रयास किया। जीवन में यदि तजुर्बा चाहते हो तो संघर्ष करना पड़ता हैं।

अंग्रेजी बोलने का प्रयास करता था। यह करते समय मुझे काफी तकलीफ हुई। अंग्रेजी कम पढ़ता था। अंग्रेजी भाषा की शब्द संपदा कम होने के कारण मेरी वाक्-शैली में वह परिपूर्णता नहीं थी। जो कुछ भी बोलता उसे आईने के सामने बोलकर देखने लगा। आईना कभी झूठ नहीं बोलता उसी प्रकार मैं अपनी गलतियों से सीखता चला गया। एक ही दिन में अंग्रेजी में कैसे परिपूर्ण हो जाता। बोलते- बोलते कई बार लोगों ने मजाक उड़ाया। मैं जिस में कमजोर हूँ उस पर कोशिश कर उसको दूर करने का प्रयास करने लगा। लोग क्या कहेंगे,पहले दिन हँसेगे, दूसरे दिन मजाक उड़ाएंगे, और तिसरे दिन भूल जाएंगे इसलिए लोगो की परवाह मत करो वही करो जो उचित हो, याद रखिये जिंदगी आपकी हैं, लोगों की नहीं।

सपने देखने में पैसे नहीं लगते, इसलिए मैंने हमेशा बड़े सपने देखे और उन ख्वाबों को पूरा करने की कोशिश करते समय कहीं कोई कमी न रह जाए इस पर बहुत ध्यान देने लगा। क्योंकि मैं जानता था कभी समस्या तो कभी समाधान हैं जिंदगी।

जो काम हमें नहीं आता उस पर प्रयास करना पड़ता है। सफलता के मार्ग पर आगे बढ़ते समय और सीखने के लिए उत्सुक रहते समय कभी-कभी कई मर्यादाएं आती है। मैंने बड़े मन से इस बात को स्वीकार किया। आज भी मैं अटकता हूँ, लेकिन रूकता नहीं हूँ। शिक्षकों को भी ग्रेड देनेवाले अमेरिका जैसे बड़े देश में 10 में से 8 या कभी-कभी 9 ग्रेड मुझे मिलते हैं, लेकिन दस में से दस क्यों नहीं? ऐसा भाव मेरे मन में कभी नहीं उठता, क्योंकि विद्यार्थियों को जो पढ़ाया है, उन्हें समझ आया या नहीं, इस ओर मैं अधिक ध्यान देता हूँ।

उनकी पढाई के साथ कोई समझौता मुझे मंजूर नही। विद्यार्थियों द्वारा पूछे गए प्रश्नों पर उन्हें बार-बार समझाने की मेरी कोशिश रहती है। इसलिए मैं विद्यार्थियों से योग्य प्रकार से संवाद साधकर उनकी समस्याओं को हल करने का प्रयास करता हूँ । मैंने जो भी पढाया उन्हें समझ में आया या नहीं? यदि समझ न आया हो तो फिर से पूछो, बार-बार पूछों ऐसा कहने पर उन्हें बल मिलने लगता है। कक्षा में सभी विद्यार्थी एक समान बुद्धिमत्ता के नहीं होते है। जो पढाई में कमजोर है, ऐसे विद्यार्थियों के साथ एक शिक्षक का साथ होना बहुत जरूरी होता है। मैं उनके जैसा बनकर उन्हें समझाने का पूरा प्रयास करता हूँ।

सिनेमा देखना और उपन्यास पढ़ना बचपन से ही बहुत पसंद है। सिनेमा जब देखता हूँ तब उसके नायक की भूमिका में, मैं खुद को रखकर देखता हूँ। इसलिए कोई भी सिनेमा देखने में मुझे मजा आता है। आज जीवन के इस मुकाम पर मैं यह अवश्य कह सकता हूँ - मैंने अँधेरा देखा, मैंने रोशनी देखी, मैं खुश हूँ कि मैंने जिंदगी देखी।

आप सचमुच बहुत आदर्श व्यक्तिमत्व है। आपकी सादगी ही आप को महान बनाती है। ऐसे शब्दों में सराहना करने वाले आज तक मुझे कई लोग मिले पर सच बताऊं तो मेरी नज़र में इंसानियत से भरा व्यवहार रख उसे निभाने में ही मुझे सच्ची मानवता नजर आती है। "सादा जीवन उच्च विचार" इस मूलमंत्र को मैं सदा अपने जीवन में अपनाता हूँ। प्रगति के पथ पर चल अपनी मंजिल की उड़ान भरने पर भी मैनें अपने कदम हमेशा जमीन पर ही रखे। मैंने अपने जीवन में अपने-पराये सभी रिश्तों को संभालकर रखने की हमेशा कोशिश की हैं।

आजकल की पीढ़ी कल की चिंता में आज को व्यर्थ कर रही है। अन्य लोगों से अपेक्षा करती है लेकिन उसपर खुद खरे उतरते हो ऐसा चित्र कहीं दिखाई नहीं पड़ता। बड़ा घर, महंगी कार, ब्रांडेड महंगे कपड़े आदि आदि.....। कभी न खत्म होती यह लिस्ट बढ़ती ही जाती है। बैंक से कर्जा लेना और उसका

ई.एम.आय.भरते-भरते स्वयं के लिए जीना ही भूल ही जाते हैं। मैं दूसरों की मदद करने के साथ ही अपने आप को पूरा समय देने का प्रयास करता हूँ।

शोधकार्य की आवश्यकतानुरूप मुझे कई देश-विदेशों में घूमना पड़ता है। कई देशों में घूमने का, वहां की संस्कृति को समझने का प्रयास करता हूँ। एक शौक के तौर पर घूमना मुझे बेहद पसंद है। मैंने कई देशों का सफर अभी तक तय किया है। पूरी दुनिया घूमना यह मेरी बकेट लिस्ट का एक हिस्सा है।

किसी भी व्यक्ति के जीवन में उसका पहला घर बहुत अहम स्थान रखता है। मैंने अमेरिका में अपना पहला घर न्यू जर्सी स्टेट के एडिसन शहर में मार्गारेट सोसाइटी में ख़रीदा था। मेरी मानवीय संवेदना इस घर से जुड़ी होने के कारण मैं आज भी अपने मालिकाना हक के टू- बी.एच.के. अपार्टमेंट में ही रहना पसंद करता हूँ। कई नए लोग सोसाइटी में आए और गए। कई लोगों ने बड़े-बड़े बंगले बना लिए लेकिन मैं कभी इन भौतिक सुखों की ओर आकर्षित नहीं हुआ। कई लोग बड़ी-बड़ी गाड़ियां ,ब्रांडेड कपड़े और भौतिक सुख-सुविधा के मोहजाल में फंसकर अमिरी का रुबाब दिखाने का प्रयास करते हैं। मेरे विचारों से सुसंस्कारों की संपत्ति ही भौतिक संसाधनो की अपेक्षा कई गुना महत्वपूर्ण होती है। सही मायने में संस्कार रूपी धरोहर हमारी आनेवाली पीढ़ी को प्रदान करनी चाहिए।

इन भौतिक सुख-सुविधाओं के पीछे भागकर जीवन जीना ही भूल जाते है, मानो वो पैसे कमाने की मशीन बन गया हो। परिस्थिति ने मुझे बहुत गरीबी के साथ अमिरी भी दिखाई ।अनाज, वस्त्र और निवास इससे अधिक हमें अन्य चीजों की आवश्यकता नहीं पड़ती है, यही मैंने अपने जीवन में सीखा है। अपने संस्कारों पर दृढ़ता से विश्वास रखकर आगे बढ़ने की मेरी कोशिश रहती है। इसलिए कल की चिंता मत कीजिए। "नो ग्यारंटी ऑफ लाइफ", जीवन का कोई भरोसा नहीं, आज है तो कल नहीं। इसलिए हमारे पास जो है उसमें संतुष्ट रहना सीखे। बिना किसी तनाव आनेवाले दिन को पूरी तरह जीने की कोशिश कीजिए। कहते हैं - "चिंता चिता के समान होती है।" इसलिए कल की चिंता में आज का समय व्यर्थ करने में आपका ही नुकसान होता है।

माँ का अंतिम सफ़र

माँ-बाबूजी के साथ कई बार फोन पर बात होती थी। बाबूजी यहां-वहां की थोड़ी-सी बात कर तुरंत माँ को फोन दे देते, परंतु माँ के शब्दों का आधार हमें जीने की नई उम्मीद देता। हमारी तबीयत ठीक न हो तो पता नहीं, माँ को कैसे समझ में आ जाता? यह एक शोध का ही विषय है। एक माँ ही जानती है बेटे की आँखे सोने से लाल है या रोने से। इस जगत में एक माँ अपने बच्चे को जितना पहचानती है, दूसरा कोई नहीं पहचान सकता। माँ के लिए उसके सभी बच्चे एक समान होते हैं चाहे वह एक हो या पाँच...। माँ का प्रेम एक मुलायम उबदार चादर के समान होता है।

कहते हैं- कुछ पाने के लिए कुछ खोना पड़ता है। धन, अमिरी, ऐश्वर्य सबकुछ मिलने के बाद भी कभी-कभी प्रश्न उठता है कि जीने के लिए पैसा इतना महत्वपूर्ण है क्या? पैसा सबकुछ नहीं होता लेकिन बहुत कुछ होता हैं। पैसा और रिश्ते-नाते एक तराजू में कभी नहीं बैठ सकते। पैसा हमारी आवश्यकता है लेकिन रिश्तों को बनाए रखने के लिए पैसा रिश्ते के आड़े आता हो तो वह रिश्ता कमजोर होने लगता है, इसलिए पैसा रिश्ते की जगह कभी नहीं ले सकता।

किसी भी व्यक्ति के मन का एक कोना भावुकता से अवश्य भरा होता है। हमारा स्वभाव आईने के समान उसमें प्रतिबिंबित होता है। लेकिन कभी-कभी मन में प्रेम भावना होकर भी हमें उसे दिखाना नहीं आता। जिम्मेदारियों से व्यक्ति को जो अनुभव मिलते है, कभी-कभी मन के खिलाफ कठोर निर्णय लेने के लिए हमें मजबूर करते है। चाहे हमारे समान किसी दूर देश में जाकर स्थायी होना हो या वहां की परंपराओं को आत्मसात करना। इसी का नाम तो जीवन है, ऐसा मुझे लगता है। मुझे यहां एक फिल्म के गीत की कुछ पंक्तियां याद आ रही है– "**जिंदगी की यही रीत है, हार के बाद ही जीत है, थोड़े आँसू है, थोड़ी खुशी आज गम है, तो कल है खुशी।**" जितनी जल्दी हम इसे स्वीकार करेंगे,

जीवन में आगे बढ़ने में हमें उतनी आसानी होती है। हमने अपने जीवन के अनुभवों से अवश्य यह बात सीखी है।

माँ को अपनी पाँचों बहुओं के साथ समय बिताने का अवसर बहुत कम मिला। पढ़ी-लिखी बहुंए अपने व्यक्तित्व, अस्मिता, स्वाभिमान, करियर इसमें इतनी उलझ गई कि उन्हें अपने रिश्ते-नाते संभालने के लिए वक्त ही नहीं मिला।

हमारे घर की तिसरी बहू स्नेहल माँ की बहुत लाडली। दोनों एक-दूसरे की बहुत परवाह करती, जिसके कारण हमें माँ की बहुत अधिक चिंता नहीं रहती थीं। स्नेहल का लगाव देखकर, वह हम सभी के लिए स्नेह की डोर में बांधनेवाला एक मजबूत धागा बन गई। बहुत कोमल ह्रदय व्यक्तित्व, पूरे परिवार को जोड़कर रखने में उसका एक अहम योगदान रहा।

माँ के जीवन में एक बेटी की कमी को स्नेहल ने पूरा किया। माँ-बाबूजी का उसीतरह वह ध्यान रखती थी। बड़ों की बातों को मानना, उनके विचारों का आदर करना अपने परिवार की तरफ देखने का उसका नजरियाँ, परिवार की चिंता स्नेहल बहुत अच्छी तरह जानती। यदि मन बड़ा हो तो सभी को उसमें समा लेने की शक्ति अपने आप आ ही जाती है और स्नेहल बिल्कुल ऐसी ही है ।

माँ को हमेशा लगता हम पाँच भाइयों में हमें एक बहन भी होती तो कितना अच्छा होता? जिसने हम पाँचों को एक सूत्र में बांधकर रखा होता। बहन की माया से हम जुड़े रहते। क्योंकि आजकल रिश्तो को टीकाकर रखने की अपेक्षा मतभेद निर्माण कर रिश्ते बिगाड़ने की अधिक कोशिश की जाती हैं। मैं और मेरा इसी चक्कर में वह अँधा हो जाता है। उसे अपने आसपास की परिस्थितियाँ और दुनिया नज़र ही नहीं आती। यदि अहंकार बढ जाए तो, उस रिश्ते की कोई कीमत ही नहीं रहती। कई बार ऐसा चित्र हमें देखने को मिलता है, परंतु इन सब चीजों से हम बहुत दूर निकल गए थे।

कई सालों से हमारे पूरे परिवार का इकट्ठा आने का संयोग नहीं बन रहा था। पिछले बारह वर्षों में तो हम कभी मिले ही नहीं इसलिए हमने तभी सुनिश्चित किया कि हर वर्ष भारत में एक पिकनिक माँ-बाबूजी के साथ निकालेंगे। माँ-बाबूजी के जीवन के संध्याकाल के समय कहीं हमारे बच्चे हमें भूल तो नहीं गए? यह भावना उनके मन में न आने पाए। दूर रहकर भी मन से हमारे पास है। इसका अलौकिक समाधान उनके चेहरे पर दिखे। इसलिए साल में एकबार मिलने का

निश्चय किया। अब हमें माँ-बाबूजी के चेहरे पर वही खुशी और समाधान दिखने लगा।

हमने कईबार इसके पहले भी ऐसा प्रयास किया, परंतु किसी न किसी कारण यह संभव नहीं हो पाया इतने बड़े परिवार के पाँच लड़के, पाँच बहुएं, नाती-पोते देश-विदेश के कोने में स्थित तीनों भाइयों को इकट्ठा लाना बहुत ही मुश्किल काम हो गया। उसके बाद सभी चैलेंज को हँसते-हँसते पार करने पर भी हम अपने परिवार से एक साथ नहीं मिल पाए।

कभी माँ की सभी बहुओं की छुट्टियाँ, बच्चों की पढ़ाई, काम की जिम्मेदारियां, परिस्थितियाँ और आनेवाला खर्चा कई ऐसे कारण सामने आए लेकिन जहां इच्छा हो वहां मार्ग निकल ही जाता है।

किसी दिन हमारे मिलने का संयोग आए इस दिशा में हमने प्रयास करना शुरु किया। हर साल हम पाँच भाइयों ने माँ-बाबूजी के साथ उन्हें जहाँ जाने की इच्छा हो वहां लेकर जाना और उनके साथ पूरा समय बिताने का निर्णय लिया। एक बार मैं अंदमान और जगन्नाथपुरी के दर्शन के लिए माँ-बाबूजी को लेकर गया। घूमने-फिरने का उद्देश्य नहीं था लेकिन घर से दूर सिर्फ माँ-बाबूजी के साथ समय व्यतीत करने की इच्छा-मात्र थी।

सब कुछ ठीक से चल रहा था। हम तीनों भाई विदेश में और दो भाई तुमसर में अपने जीवन में खुश थे। अब सबकुछ स्थिर होने का आनंद माँ-बाबूजी के बातों से झलकता था। हमें माँ-बाबूजी की बहुत अधिक चिंता नहीं थी, क्योंकि बालू और स्नेहल माँ-बाबूजी का पूरा ध्यान रखते। बीच-बीच में वीडियो कॉल पर उनसे बात हो जाती। उनकी तबीयत और हाल-चाल पूछ लेते थे। सब कुछ ठीक है, यह सुनकर हमारा मन निश्चिंत हो जाता। इससे बड़ा सुख हमारे लिए और हो भी क्या सकता था?

उम्र के 66 वर्ष में अचानक माँ को लीवर सोरायसिस की बीमारी होने की बात पता चली। माँ को कुछ भी खाया हुआ पचता नहीं था। पचाने की तकलीफ के साथ-साथ, दर्द भी बढ़ने लगा था। नागपुर के बड़े-बड़े डॉक्टरों के यहां इलाज चल रहा था। महीने-पंद्रह दिन में डॉक्टर के पास जाकर माँ को दिखाया जाने लगा लेकिन बहुत दवाइयाँ लेकर भी कोई फर्क नहीं पड़ा। बीमारी बताकर नहीं आती।

उसी दौरान संपूर्ण विश्व में कोरोना ने अपना कहर ढाया। कोरोना का कहर हर-घर में दहशत फैलाए हुए था। अपनी-अपनी जगह रहकर, अपना ध्यान

रखने की सूचना सरकार देने लगी और हालातों को देखते हुए यह सभी से अपेक्षित भी था। सभी से फोन पर बात हो जाती थी और हालचाल पूछा जाता।

अचानक एक दिन माँ की तकलीफ बढ़ने लगी। बालू ने हमें फोन कर बताया। तुरंत ही मैं, जीतू और क्रांति हम तीनों ने भारत आने का निर्णय लिया। ऐसी विश्व महामारी के समय सफर करना धोखादायक था। सफर के दौरान कोरोना हो सकता था। उस परिस्थिति में भी पूरे नियमों को ध्यान में रखते हुए, हम तीनों भाई भारत आए।

माँ-बाबूजी के साथ अपना पूरा समय बिताएंगे, इस विचार से हम दो-तीन महीने की छुट्टियाँ लेकर ही आए थे। परंतु नियति को क्या मंजूर था, पता नहीं? हमारे भारत पहुँचने के एक दिन पहले ही, माँ की तबीयत बिगड़ गई। डॉक्टर ने बताया कि, माँ को कोरोना हो गया है। बालू ने माँ को नागपुर के अच्छे अस्पताल में एडमिट कर दिया था।

भारत आते ही हमें भी कोविड की टेस्ट करानी पड़ी। हमारी कोरोना टेस्ट निगेटिव्ह आई, फिर भी सरकारी नियमो के अनुसार हमें क्वॉरेंटाइन रहना ही पड़ा। हम सभी ने नागपुर के एक होटल में रहने का निर्णय लिया। वहां एक होटल का पूरा फ्लोर ही बुक कर लिया।

मैं, जीतू, क्रांति, बालू और स्नेहल हम सभी एक ही जगह पर ठहरे थे। डॉक्टर से पूछकर, एक नर्स के फोन पर वीडियो कॉल कर माँ से दो-तीन बार बात करने लगे।

हम आ गए हैं माँ..!!

माँ...!! तुम किसी भी तरह हिम्मत मत हारना। बीमारी से लड़ती आई हो..! और अब इस कोरोना से भी तुम्हें लड़ना है.. माँ..!!

माँ का मानसिक हौंसला बढ़ाने का प्रयास हम करने लगे। माँ पर उपचार चल रहे थे। धीरे-धीरे माँ की हालत सुधरने लगी, दवाई पर सकारात्मक प्रतिसाद देने से उनकी तबीयत ठीक होने लगी। बीमारी से थका हुआ शरीर और परिस्थिति से टूटा मन अपने बच्चों से मिलने के लिए एक बार फिर तैयार था। माँ कोरोना से बहुत धैर्य से लड़ने लगी, अब माँ को घर जाने की इच्छा होने लगी। इसी बीच, एक बार हॉस्पिटल के सभी नियमों का पालन करते, PPE किट पहनकर जीतू माँ को दूर से ही देख आया।

माँ की कोरोना टेस्ट निगेटिव्ह आ गई। माँ को अब हॉस्पिटल से घर जाने की इच्छा होने लगी। हम सभी भाई अपनी जिम्मेदारी पर माँ को अपने घर ले आए। तुमसर में हम सभी को इस तरह एक छत के नीचे देखकर माँ के चेहरे पर समाधान दिखा। शरीर में थकावट थी, लेकिन फिर भी मैं ठीक हूँ। यही वो दिखा रही थी। दो ही दिन में माँ की तबीयत फिर बिगड़ गई, तुरंत एम्बुलेंस से नागपुर लाना पड़ा। भाग्य ने इस बार साथ नहीं दिया, और माँ हमें हमेशा के लिए अकेला छोड़कर दूर के सफर पर निकल गई। आसमान में दूर कहीं सितारों में जाकर बस गई।

अपने पाँचों बच्चों को जी भर कर देखने की कही इच्छा तो नहीं होगी? माँ ने हम पाँचों भाईयों को एक छत के नीचे इकट्ठा देखने के बाद ही अपने प्राण त्याग दिए।

मैं बिल्कुल ठीक हूँ, यह बताकर माँ ने झूठ बोलकर हमें फँसाया तो नहीं? या हम ही कम पड़ गए? माँ की तबीयत का अंदाजा लेने में..!!! ऐसे एक नहीं कई सवाल माँ के जाने से अनुत्तरित ही रह गए?

आज सब कुछ है, परंतु माँ हमारे साथ नहीं है। मेरे जीवन का ऐसा एक भी पल नहीं होता, जब माँ की याद न आती हो। अभी हाल ही में मिले हुए प्रेसिडेंट स्टार अवार्ड के समय मुझे इस मुकाम पर देखने तथा मेरी प्रशंसा के लिए, मेरे पास माँ होती, तो कितना अच्छा होता। मन भावुक हो उठा, आँखों में आँसुओं की झड़ी लग गई। परंतु माँ अपने दिए हुए संस्कारों के रूप में हमेशा मेरे साथ है।

"माँ..! जहाँ - कहीं भी हो..!", "आसमान के सितारों से झाँककर, मुझे आशीर्वाद देती होगी।" अंत में मनुष्य चला जाता है, परंतु उसके कार्यों की खुशबु उसके आसपास यादों के रूप में महकती है। इस पर विश्वास करना ही पड़ता है।

उस समय माँ के विचार और दूर दृष्टिकोन की सचमुच जितनी प्रशंसा की जाए कम है। माँ का यह दृष्टिकोण मुझे हमेशा प्रेरित करता रहा। माँ के सकारात्मक विचार समय के साथ ही हमें भी समृद्ध करते गए। सचमुच बहुत गर्व होता है कि मैं इतनी समझदार माँ का बेटा हूँ।

मेरा यह सफर माँ-बाबूजी, मेरे गुरुजन, मेरे भाइयों और मेरी पत्नी अपर्णा और आस्था के त्याग के बिना अपूर्ण था। आज माँ को गए दो साल पूरे हुए। माँ की स्मृति हेतु, हर वर्ष छोटे-छोटे गांव से आने वाले चार से पाँच बच्चों को उनकी उच्च शिक्षा में सहयोग और प्रोत्साहन मिले इस उद्देश्य से "स्कॉलरशिप"

(छात्रवृत्ति) देने की घोषणा करता हूँ। मेरे लिए माँ दुनियाँ की सबसे खास हस्ती हैं, उनके क़दमों में ही मेरी दुनियाँ बसती हैं।

"एक तारे की उड़ान" - गांव से सात समंदर पार एक वैज्ञानिक का सफर, स्मृतिपुस्तक के अवसर पर माँ को कोटि-कोटि अभिवादन कर माँ के चरण कमलों में इसे समर्पित करता हूँ।